हिन्दी पाठ-संचयन

कक्षा–एकादश एवं द्वादश

नवीन पाठ्य–क्रम

हिन्दी 'ब' (द्वितीय भाषा)

पश्चिम बंग सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान
एकादश श्रेणी के छात्र–छात्राओं को बिना मूल्य वितरण के लिए।
विक्रय के लिए नहीं।

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 2016

द्वितीय संस्करण : जनवरी, 2017

प्रकाशक

सभापति, डॉ० महुआ दास

सचिव, पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

मुद्रक

वेस्ट बंगाल टेक्स्ट बुक कार्पोरेशन लिमिटेड

(पश्चिम बंग सरकार का उपक्रम)

कोलकाता – 700 056

सत्यमेव जयते

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भूमिका

पश्चिम बंग के विद्यालयी शिक्षा-विभाग की '**विशेषज्ञ समिति**' द्वारा निर्मित एवं 'पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद' द्वारा प्रकाशित **'हिन्दी पाठ-संचयन पुस्तक'** का नवीन संस्करण नये कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। यह एकादश एवं द्वादश कक्षा के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी द्वितीय भाषा की पाठ्य पुस्तक है। नये पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या के अनुसार प्रकाशित **हिन्दी पाठ-संचयन** पुस्तक का मूल उद्देश्य वर्तमान समय के विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य के समृद्ध भण्डार से परिचित कराना है। हमें विश्वास है कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने में आशातीत सफलता मिलेगी। एकादश एवं द्वादश श्रेणी के विद्यार्थीगण इस संकलन के माध्यम से देश के ख्याति प्राप्त हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का आस्वादन कर सकेंगे। इस संकलन में गद्य एवं पद्य की विविध रचनाओं को विभिन्न विधाओं (निबंध, कहानी, यात्रा-वृत्त, नाटक एवं कविता) के साथ संकलित किया गया है।

माननीय **शिक्षा मंत्री डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रयास के फलस्वरूप पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा-विभाग के अनुदान से इस पुस्तक को वर्ष 2017 से विद्यार्थियों को बिना मूल्य देने करने का निर्णय लिया गया है। हम पश्चिम बंग सरकार के माननीय शिक्षा मंत्री **डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रति इसकी शुरुआत के लिए आभार व्यक्त करते हैं साथ ही 'पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा-विभाग' के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हम उन सभी लोगों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना योगदान दिया है।

इस पुस्तक के सुधार के लिए विद्वानों एवं शिक्षा-प्रेमी व्यक्तियों के सुझावों एवं विचारों का सादर स्वागत है।

जनवरी, 2017

विद्यासागर भवन

डॉ० महुआ दास

सभापति

पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

प्रस्तावना

पश्चिम बंग की **माननीया मुख्य मंत्री सुश्री ममता बन्द्योपाध्याय** के निर्देश से वर्ष 2011 में विद्यालयी शिक्षा की **'विशेषज्ञ समिति'** का गठन किया गया। **'विशेषज्ञ समिति'** एवं **'पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद'** के संयुक्त प्रयास से निर्मित एवं राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित एकादश एवं द्वादश कक्षा के लिए हिन्दी द्वितीय भाषा की पाठ्यपुस्तक **'हिन्दी पाठ-संचयन'** का प्रकाशन किया गया है जिसे सभी सरकारी, सरकार समर्थित, सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एवं सरकार सम्बद्ध विद्यालयों में पढ़ाया जाएगा।

नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या पर आधारित यह संकलन देश के ख्याति प्राप्त हिन्दी एवं अन्य भाषाओं के रचनाकारों के कहानी, निबंध, नाटक, यात्रा-वृत्त, एवं कविताओं का संचयन है। पाठों के चयन में विद्यार्थियों की आयु को ध्यान में रखा गया है। प्रश्न-पत्र के प्रारूप एवं अंक-विभाजन में मूलभूत परिवर्तन किया गया है। उच्च माध्यमिक के पाठ्यक्रम में परियोजना कार्य को भी शामिल किया गया है। वर्ष 2013 से नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या के अनुसार निर्मित पुस्तक के पठन-पाठन से उच्च माध्यमिक स्तर पर हिन्दी द्वितीय भाषा के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन देखा जा रहा है।

राज्य सरकार ने वर्ष 2017 से इस पुस्तक को विद्यार्थियों को बिना मूल्य देने का निर्णय लिया है, जिससे वे लाभान्वित हो सकें। हम पश्चिम बंग सरकार के माननीय शिक्षामंत्री **डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रति इसकी पहल के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा-विभाग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हम प्रो० (डॉ०) **महुआ दास** को उनके बहुमूल्य सुझाव और योगदान हेतु कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी व्यक्तियों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आभार प्रकट करते हैं।

जनवरी, 2017
निवेदिता भवन

अभीक मजुमदार
चेयरमैन
विशेषज्ञ समिति, विद्यालय शिक्षा विभाग
पश्चिम बंग सरकार

उच्च माध्यमिक हिन्दी सलाहकार समिति

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

अभीक मजुमदार
(चेयरमैन, विशेषज्ञ समिति)

डॉ० महुआ दास
(सभापति, पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद)

रथीन्द्रनाथ दे
(सदस्य-सचिव, विशेषज्ञ समिति)

मुख्य समन्वयक

प्रो. रिंकू घोष

सदस्य

श्रीमती सुनीता मेहरा	श्री पीयूष श्रीवास्तव	डॉ० पूनम पाठक
श्रीमती सुधा त्रिपाठी	श्रीमती अर्चना सिंह	श्रीमती तानिया गुप्ता चौधरी

सहायक सदस्य

कौशल कुमार पाण्डेय

परामर्शदाता

श्री अरुण कुमार सिंह

प्रधानाध्यापक
आदर्श शिक्षा निकेतन
6/4B सचिन मित्रा लेन, श्यामबाजार
कोलकाता - 700 003

आवरण

शान्तनु दे

अनुशीलनी

कक्षा–एकादश

निबंध		
हमारी वर्तमान समस्या	स्वामी विवेकानन्द	03-08
कहानी एवं यात्रा–वृत्तांत		
उसने कहा था	चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	11-20
मुर्दों की दुनिया	कमलेश्वर	21-29
बहता पानी निर्मला	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	30-34
एकांकी		
अधिकार का रक्षक	उपेन्द्रनाथ अश्क	37-48
काव्य		
तुलसीदास के पद	तुलसीदास	51-52
रहीम के दोहे	रहीम	53
वृन्द के दोहे	वृन्द	54
चारू चन्द्र की चंचल किरणें	मैथिलीशरण गुप्त	55
मुझे पुकार लो	हरिवंशराय 'बच्चन'	56-58
पारिभाषिक शब्दावली		61

अनुशीलनी

कक्षा–द्वादश

निबंध

साहित्य	महावीर प्रसाद द्विवेदी	67-69

कहानी एवं यात्रा–वृत्तांत

भेड़ और भेड़िये	हरिशंकर परसाई	73-76
बूढ़ी काकी	मुंशी प्रेमचंद	77-82
छुट्टी	रवीन्द्रनाथ टैगोर	83-88

एकांकी

आजादी की नींद	भुवनेश्वर प्रसाद	91-100

काव्य

कबीर के दोहे	कबीरदास	103-104
सूरदास के पद (भ्रमरगीत)	सूरदास	105-106
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी	सोहनलाल द्विवेदी	107-109
आभार	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	110-111
पानी में घिरे हुए लोग	केदारनाथ सिंह	112-114

पारिभाषिक शब्दावली 117

हिन्दी - 'ब'

पाठ्य - सामग्री (एकादश)

पूर्णांक – 100 (90+10)

गद्य	30 अंक
पद्य	20 अंक
निबंध	15 अंक
पारिभाषिक शब्दावली	05 अंक
व्याकरण	20 अंक
परियोजना (Project)	10 अंक
कुल	**100 अंक**

गद्य :—

(क)	निबंध	-	हमारी वर्तमान समस्या	-	स्वामी विवेकानंद
(ख)	कहानी	-	उसने कहा था	-	चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
			मुर्दों की दुनिया	-	कमलेश्वर
(ग)	यात्रा- वृतांत	-	बहता पानी निर्मला	-	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
(घ)	एकांकी	-	अधिकार का रक्षक	-	उपेन्द्रनाथ अश्क

पद्य :—

भक्तिकालीन कवि

तुलसीदास के पद	(क)	'अबलौं नसानी	कमल बसैहौं
	(ख)	मन मेरे मानहि	कपट लौ

लाए।

रहीम के दोहे :	(1)	जाल परे जल	छोह
	(2)	धनि रहीम जल	पियासो जाय
	(3)	रहिमन वे नर मर चुके	निकसन नाहीं
	(4)	रहिमन नीचन संग बसि	सव ताहि
	(5)	प्रीतम छबि नैनन	पथिक फिरि

जाय

(6) मान सहित विष खाय के .... राहु कटायो

सीस

(7) यह रहीम निज संग लै .... होत होत ही होई

(8) रहिमन धागा प्रेम का .... गाँठ परि जाय

(9) जैसी परै सो सहि .... सीत, घाम और मेह

(10) जो रहीम उत्तम प्रकृति .... रहत भुजंग

रीतिकालीन कवि

वृंद के दोहे -

(1) करत- करत अभ्यास .... परत निसान।

(2) उत्तम विद्या लीजिए .... तजत न कोय।

(3) सरसुति के भण्डार .... घटि जात।

(4) कुल कपूत .... चीकने पात।

(5) कछु नीच ....बिगारै अंग।

(6) अपनी पहुँच .... लांबी सौर।

(7) नैंना देत .... बुरी कहि देत।

(8) अति परिचै .... देत जराय।

(9) भले- बुरे सब .... बसंत के माहि।

(10) सबै सहायक .... दीपहिं देत बुझाय।

आधुनिक कवि

मैथिलीशरण गुप्त— "चारूचन्द्र की चंचल किरणें" (पंचवटी)

हरिवंशराय 'बच्चन'— मुझे पुकार लो

निबंध लेखन (लगभग 500 शब्द)

पारिभाषिक शब्दावली -- 50 शब्द

व्याकरण :

(वाक्य संशोधन, लिंग, उपसर्ग, प्रत्यय, समास)

परियोजना :

(आधुनिक संचार माध्यम पर आधारित विषय संबंधित)

निबंध

हमारी वर्तमान समस्या

स्वामी विवेकानन्द

लेखक परिचय :

स्वामी विवेकानन्द का वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनका जन्म 12 जनवरी सन् 1863 ई० में कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकता उच्च न्यायालय में अटार्नी (अधिवक्ता) थे। इनके पिता प्रगतिशील विचारों के थे। माता भुवनेश्वरी देवी धार्मिक आस्था की महिला थीं। विवेकानन्द जी बचपन से ही मेधावी एवं कुशाग्र बुद्धि के थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर मेट्रोपोलिटन स्कूल में हुई। युवा अवस्था से ही इनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर रहा। इनकी वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत एवं पुराणों के अध्ययन में विशेष रूचि थी। इन्होंने पाश्चात्य दार्शनिकों एवं चिंतकों डेविड ह्यूम, इमेनुएल कान्ट, हिगेल, जॉन स्टुअर्ट मिल, चॉर्ल्स डारविन आदि के कार्यों का भी अध्ययन किया। रामकृष्ण परमहंस इनके गुरू थे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं— *संगीत कल्पतरू, कर्मयोग, राजयोग, वेदांत दर्शन, ज्ञानयोग, वर्तमान भारत, आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।*

विवेकानन्द जी ने पाश्चात्य देशों में भारतीय वेदान्त दर्शन एवं योग का प्रचार किया। इन्होंने हिन्दू धर्म के पुनरूत्थान एवं पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद में राष्ट्रीयता का उन्मेष करने वाले प्रमुख लोगों में से एक थे। इन्होंने 1893 ई० में अमेरिका जाकर हिन्दू धर्म एवं दर्शन का प्रचार-प्रसार किया। इन्होंने रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ की स्थापना किया। 4 जुलाई सन् 1902 ई० को बेलूर मठ में इस महान मनीषी का देहावसान हो गया।

भारत का प्राचीन इतिहास एक देवतुल्य जाति के अलौकिक उद्यम, अद्‌भुत चेष्टा, असीम उत्साह, अप्रतिहत शक्तिसमूह, और सर्वोपरि, अत्यन्त गम्भीर विचारों से परिपूर्ण है। 'इतिहास' शब्द का अर्थ यदि केवल राजे-रजवाड़ो की कथाएँ, उनके काम-क्रोध-व्यसनादि के द्वारा समय समय पर डाँवाडोल और उनकी सुचेष्टा या कुचेष्टा से रंग बदलते हुए समाज का चित्र माना जाय, तो कहना होगा कि इस प्रकार का इतिहास सम्भवत: भारत का है ही नहीं। किन्तु भारत के समस्त धर्मग्रन्थ, काव्य-सिन्धु, दर्शन शास्त्र और विविध वैज्ञानिक पुस्तकें अपने प्रत्येक पद और पंक्ति से, राजादि पुरुषविशेषों का वर्णन करनेवाली पुस्तकों की अपेक्षा सहस्त्रों गुना अधिक स्पष्ट रूप से, भूख-प्यास-काम-क्रोधादि से परिचालित, सौन्दर्य-तृष्णा से आकृष्ट, महान अप्रतिहत बुद्धिसम्पन्न उस बृहत जनसंघ के अभ्युदय के क्रमविकास का गुणगान कर रही हैं,

जिस जन-समाज ने सभ्यता के प्रत्यूष के पहले ही नाना प्रकार के भावों का आश्रय ले, नानाविध पथों का अवलम्बन कर इस गौरव की अवस्था को प्राप्त किया था। प्राचीन भारतवासियों ने प्रकृति के साथ युग-युगान्तरव्यापी संग्राम में जो असंख्य जय-पताकाएँ संग्रह की थीं, वे झंझावात के झरोखे में पड़कर यद्यपि आज जीर्ण हो गयी हैं, किन्तु फिर भी वे भारत के अतीत गौरव की जय-घोषणा कर रही हैं।

इस जाति ने मध्य एशिया, उत्तर यूरोप अथवा उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती बर्फीले प्रदेशों से धीरे धीरे आकर पवित्र भारतभूमि को तीर्थ में परिणत किया था। अथवा यह तीर्थभूमि भारत ही उनका आदिम निवास-स्थान था—यह निश्चय करने का अब तक भी कोई साधन उपलब्ध नहीं।

अथवा, भारत की ही, या भारत की सीमा के बाहर किसी देश में रहनेवाली एक विराट् जाति ने नैसर्गिक नियम के अनुसार स्थान-भ्रष्ट होकर यूरोपादि देशों में उपनिवेश स्थापित किये, और इस जाति के मनुष्यों का रंग गौर था या काला, आँखें नीली थीं या काली, बाल सुनहरे थे या काले—इन बातों को निश्चयात्मक रूप से जानने के लिए कतिपय यूरोपीय भाषाओं के साथ संस्कृत भाषा के सादृश्य के अतिरिक्त कोई यथेष्ट प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। वर्तमान भारतवासी उन्हीं लोगों के वंशज हैं या नहीं, अथवा भारत की किस जाति में किस परिमाण में उनका रक्त है, इन प्रश्नों की मीमांसा भी सहज नहीं।

चाहे जो हो, इस अनिश्चितता से भी हमारी कोई विशेष हानि नहीं।

पर एक बात ध्यान में रखनी होगी, और वह यह कि जो प्राचीन भारतीय जाति सभ्यता की रश्मियों से सर्वप्रथम उन्मीलित हुई और जिस देश में सर्वप्रथम चिन्तनशीलता का पूर्ण विकास हुआ, उस जाति और उस स्थान में उसके लाखों वंशज—मानस-पुत्र—उसके भाव एवं चिन्तनराशि के उत्तराधिकारी अब भी मौजूद हैं। नदी, पर्वत और समुद्र लाँघकर, देश-काल की बाधाओं को नगण्य कर, स्पष्ट या अज्ञात अनिर्वचनीय सूत्र से भारतीय चिन्तन की रुधिरधारा अन्य जातियों की नसों में बही और अब भी बह रही है।

शायद हमारे हिस्से में सार्वभौम पैतृक सम्पत्ति कुछ अधिक है।

भूमध्य सागर के पूर्वी कोने में सुन्दर द्वीपमाला-परिवेष्टित, प्रकृति के सौन्दर्य से विभूषित एक छोटे देश में, थोड़े से किन्तु सर्वांग-सुन्दर, सुगठित, मजबूत, हलके शरीरवाले, किन्तु अटल अध्यवसायी, पार्थिव सौंदर्य सृष्टि के एकाधिराज, अपूर्व क्रियाशील प्रतिभाशाली मनुष्यों की एक जाति थी।

अन्यान्य प्राचीन जातियाँ उनको 'यवन' कहती थीं। किन्तु वे अपने को 'ग्रीक' कहते थे।

मानव जाति के इतिहास में यह मुट्ठी भर अलौकिक वीर्यशाली जाति एक अपूर्व दृष्टान्त है। जिस किसी देश के मनुष्यों ने समाजनीति, युद्धनीति, देशशासन, शिल्प-कला आदि पार्थिव विद्याओं में उन्नति की है या जहाँ अब भी उन्नति हो रही है, वहीं यूनान की छाया पड़ी है। प्राचीन काल की बात छोड़ दो; आधुनिक समय में भी आधी शताब्दी से इन यवन गुरुओं का पदानुसरण कर यूरोपीय साहित्य के द्वारा यूनानवालों का जो प्रकाश आया है, उसी प्रकाश से अपने गृहों को आलोकित कर हम आधुनिक बंगाली स्पर्धा का अनुभव कर रहे हैं।

समग्र यूरोप आज सब विषयों में प्राचीन यूनान का छात्र और उत्तराधिकारी है; यहाँ तक कि, इंग्लैण्ड के एक विद्वान ने कहा भी है, 'जो कुछ प्रकृति ने उत्पन्न नहीं किया है, वह यूनानवालों की सृष्टि है।'

सुदूरस्थित विभिन्न पर्वतों (भारत और यूनान) से उत्पन्न इन दो महानदों (आर्यों और यूनानियों) का बीच-बीच में संगम होता रहता है; और जब कभी इस प्रकार की घटना घटती है, तभी जन-समाज में एक बड़ी आध्यात्मिक तरंग उठकर सभ्यता की रेखा का दूर दूर तक विस्तार कर देती है और मानव समाज में भ्रातृत्व-बन्धन को अधिक दृढ़ कर देती है।

अत्यन्त प्राचीन काल में एक बार भारतीय अध्यात्म-विद्या यूनानी उत्साह के साथ मिलकर, रोमन, ईरानी आदि शक्तिशाली जातियों के अभ्युदय में सहायक हुई। सिकन्दर शाह के दिग्विजय के पश्चात इन दोनों महा जलप्रपातों के संघर्ष के फलस्वरूप ईसा आदि नाम से प्रसिद्ध आध्यात्मिक तरंग ने प्राय: आधे संसार को प्लावित कर दिया। पुन: इस प्रकार के मिश्रण से अरब का अभ्युदय हुआ, जिससे आधुनिक यूरोपीय सभ्यता की नींव पड़ी एवं ऐसा जान पड़ता है कि वर्तमान समय में भी पुन: इन दोनों महाशक्तियों का सम्मिलन-काल उपस्थित हुआ है।

अब की बार (उनका) केन्द्र है भारत।

भारत की वायु शान्ति-प्रधान है, यवनों की प्रकृति शक्तिप्रधान है; एक गम्भीर चिन्तनशील है, दूसरा अदम्य कार्यशील; एक का मूलमंत्र है 'त्याग' दूसरे का 'भोग'; एक की सब चेष्टाएँ अन्तर्मुखी हैं, दूसरे की बहिर्मुखी; एक की प्राय: सब विद्याएँ आध्यात्मिक हैं, दूसरे को आधिभौतिक; एक मोक्ष का अभिलाषी है, दूसरा स्वाधीनता को प्यार करता है; एक इस संसार के सुख प्राप्त करने में निरुत्साह है, और दूसरा इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में सचेष्ट है; एक नित्य सुख की आशा में इस लोक के अनित्य सुख की उपेक्षा करता है, दूसरा नित्य सुख में शंका कर अथवा उसको दूर जानकर यथासम्भव ऐहिक सुख प्राप्त करने में उद्यत रहता है।

इस युग में पूर्वोक्त दोनों ही जातियों का लोप हो गया है, केवल उनकी शारीरिक अथवा मानसिक सन्तानें ही वर्तमान हैं।

यूरोप तथा अमेरिकावासी तो यवनों की समुन्नत मुखोज्ज्वलकारी सन्तान हैं, पर दु:ख है कि आधुनिक भारतवासी प्राचीन आर्यकुल के गौरव नहीं रह गये हैं।

किन्तु राख से ढकी हुई अग्नि के समान इन आधुनिक भारतवासियों में भी छिपी हुई पैतृक शक्ति विद्यमान है। यथासमय महाशक्ति की कृपा से उसका पुन: स्फुरण होगा।

प्रस्फुरित होकर क्या होगा?

क्या पुन: वैदिक यज्ञधूम से भारत का आकाश मेघावृत होगा, अथवा पशुरक्त से रन्तिदेव की कीर्ति का पुनरुद्दीपन होगा? गोमेध, अश्वमेध, देवर के द्वारा सन्तानोत्पत्ति आदि प्राचीन प्रथाएँ पुन: प्रचलित होंगी अथवा बौद्ध काल की भाँति फिर समग्र भारत संन्यासियों की भरमार से एक विस्तृत मठ में परिणत होगा?

मनु का शासन क्या पुन: उसी प्रभाव से प्रतिष्ठित होगा अथवा देश-भेद के अनुसार भक्ष्याभक्ष्य-विचार का ही आधुनिक काल के समान सर्वतोमुखी प्रभुत्व रहेगा ? क्या जाति-भेद गुणानुसार (गुणगत) होगा अथवा सदा के लिए वह जन्म के अनुसार (जन्मगत) ही रहेगा ? जाति-भेद के अनुसार भोजन-सम्बन्ध में छुआछूत का विचार बंग देश के समान रहेगा अथवा मद्रास आदि प्रान्तों के समान महान कठोर रूप धारण करेगा या पंजाब आदि प्रदेशों के समान यह एकदम ही दूर हो जायेगा ? भिन्न-भिन्न वर्णों का विवाह मनु के द्वारा बतलाये हुए अनुलोम क्रम से— जैसे नेपालादि देशों में आज भी प्रचलित है— पुन: सारे देश में प्रचलित होगा अथवा बंग आदि देशों के समान एक वर्ण के अवान्तर भेदों में ही सीमित रहेगा ? इन सब प्रश्नों का उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। देश के विभिन्न प्रान्तों में, यहाँ तक कि एक ही प्रान्त में भिन्न-भिन्न जातियों और वंशों के आचारों की घोर विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए यह मीमांसा और भी कठिन जान पड़ती है।

तब क्या होगा ?

जो हमारे पास नहीं है, शायद जो पहले भी नहीं था, जो यवनों के पास था, जिसका स्पन्दन यूरोपीय विद्युदाधार (डाइनेमो) से उस महाशक्ति को बड़े वेग से उत्पन्न कर रहा है, जिसका संचार समस्त भूमण्डल में हो रहा है—हम उसी को चाहते हैं। हम वही उद्यम, वही स्वाधीनता का प्रेम, वही आत्मनिर्भरता, वही अटल धैर्य, वही कार्यदक्षता, वही एकता और वही उन्नति-तृष्णा चाहते हैं। हम बीती बातों की उधेड़-बुन छोड़कर अनन्त तक विस्तारित अग्रसर दृष्टि चाहते हैं और चाहते हैं आपादमस्तक नस नस में बहनेवाला रजोगुण।

त्याग की अपेक्षा और अधिक शान्तिदायी क्या हो सकता है ? अनन्त कल्याण की तुलना में क्षणिक ऐहिक कल्याण निश्चय ही अत्यन्त तुच्छ है। सत्त्व गुण की अपेक्षा महाशक्ति का संचय और किससे हो सकता है ? यह सत्य है कि अध्यात्म-विद्या की तुलना में और सब तो 'अविद्या' हैं, किन्तु इस संसार में कितने मनुष्य सत्त्व गुण प्राप्त करते हैं ? इस भारत में ऐसे कितने मनुष्य हैं ? कितने मनुष्यों में ऐसा महावीरत्व है, जो ममता को छोड़कर सर्वत्यागी हो सकें ? वह दूरदृष्टि कितने मनुष्यों के भाग्य में है, जिससे सब पार्थिव सुख तुच्छ विदित होते हैं ! विशाल हृदय कहाँ है, जो भगवान के सौन्दर्य और महिमा के चिन्तन में अपने शरीर को भी भूल जाता है ! जो ऐसे हैं भी, वे समग्र भारत की जनसंख्या की तुलना में मुट्ठी भर ही हैं। इन थोड़े से मनुष्यों की मुक्ति के लिए करोड़ों नर-नारियों को सामाजिक और आध्यात्मिक चक्र के नीचे क्या पिस जाना होगा ?

और इस प्रकार पिसे जाने का फल भी क्या होगा ?

क्या तुम देखते नहीं कि इस सत्त्व गुण के बहाने से देश धीरे-धीरे तमोगुण के समुद्र में डूब रहा है ? जहाँ महा जड़बुद्धि पराविद्या के अनुराग के छल से अपनी मूर्खता छिपाना चाहते हैं; जहाँ जन्म भर का आलसी वैराग्य के आवरण को अपनी अकर्मण्यता के ऊपर डालना चाहता है; जहाँ क्रूर कर्मवाले तपस्यादि का स्वाँग करके निष्ठुरता को भी धर्म का अंग बनाते है; जहाँ अपनी कमजोरी के ऊपर किसी की भी दृष्टि नहीं है, किन्तु प्रत्येक मनुष्य दूसरों के ऊपर दोषारोपण करने को तत्पर है, जहाँ केवल कुछ पुस्तकों को कण्ठस्थ करना ही विद्या है, दूसरों के विचारों को दुहराना ही प्रतिभा है, और इन सबसे बढ़कर केवल पूर्वजों के नाम-कीर्तन में ही जिसकी महत्ता रहती है, वह देश दिन पर दिन तमोगुण में डूब रहा है, यह सिद्ध करने के लिए हमको क्या और प्रमाण चाहिए !

अतएव सत्त्व गुण अब भी हमसे बहुत दूर है। हममें जो परमहंस-पद प्राप्त करने योग्य नहीं हैं, या जो भविष्य में योग्य होना चाहते हैं, उनके लिए रजोगुण की प्राप्ति ही परम कल्याणप्रद है। बिना रजोगुण के क्या कोई सत्त्व गुण प्राप्त कर सकता है? बिना भोग का अन्त हुए योग हो ही कैसे सकता है? बिना वैराग्य के त्याग कहाँ से आयेगा?

दूसरी ओर रजोगुण ताड़ के पत्ते की आग की तरह शीघ्र ही बुझ जाता है। सत्त्व का अस्तित्व नित्य वस्तु के निकटतम है, सत्त्व प्राय: नित्य सा है। रजोगुणवाली जाति दीर्घजीवी नहीं होती, सत्त्व गुणवाली जाति चिरंजीवी सी होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है।

भारत में रजोगुण का प्राय: सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में सत्त्व गुण का अभाव है। इसलिए यह निश्चित है कि भारत से बही हुई सत्त्व धारा के ऊपर पाश्चात्य जगत् का जीवन निर्भर है, और यह भी निश्चित है कि बिना तमोगुण को रजोगुण के प्रवाह से दबाये, हमारा ऐहिक कल्याण नहीं होगा और बहुधा पारलौकिक कल्याण में भी विघ्न उपस्थित होंगे।

इन दोनों शक्तियों के सम्मिलन और मिश्रण की यथासाध्य सहायता करना इस 'उद्‌बोधन' पत्र का उद्देश्य है।

पर भय यह है कि इस पाश्चात्य वीर्य-तरंग में चिरकाल से अर्जित कहीं हमारे अमूल्य रत्न तो न बह जाएँगे? और उस प्रबल भँवर में पड़कर भारतभूमि भी कहीं ऐहिक सुख प्राप्त करने की रण-भूमि में तो न बदल जायेगी? असाध्य, असम्भव एवं जड़ से उखाड़ देनेवाले विदेशी ढंग का अनुकरण करने से हमारी 'न घर के न घाट के' जैसी दशा तो न हो जायेगी—और हम 'इतो नष्टस्ततो भ्रष्ट:' के उदाहरण तो न बन जायँगे? इसलिए हमको अपने घर की सम्पत्ति सर्वदा सम्मुख रखनी होगी, जिससे जन-साधारण तक अपने पैतृक धन को सदा देख और जान सकें, हमको ऐसा प्रयत्न करना होगा और इसी के साथ-साथ बाहर से प्रकाश प्राप्त करने के लिए हमको निर्भीक होकर अपने घर के सब दरवाजे खोल देने होंगे। संसार के चारों ओर से प्रकाश की किरणें आयें, पाश्चात्य का तीव्र प्रकाश भी आये! जो दुर्बल, दोषयुक्त है, उसका नाश होगा ही। उसे रखकर हमें क्या लाभ होगा? जो वीर्यवान, बलप्रद है, वह अविनाशी है; उसका नाश कौन कर सकता है?

कितने पर्वत-शिखरों से कितनी ही हिम नदियाँ, कितने ही झरने, कितनी जल-धाराएँ निकलकर विशाल सुर-तरंगिणी के रूप में महावेग से समुद्र की ओर जा रही हैं! कितने विभिन्न प्रकार के भाव, देश-देशान्तर के कितने साधु-हृदयों और ओजस्वी मस्तिष्कों से निकलकर कितने शक्ति-प्रवाह नर-रंगक्षेत्र, कर्मभूमि भारत में छा रहे हैं! रेल, जहाज जैसे वाहन और बिजली की सहायता से, अंग्रेजों के आधिपत्य में, बड़े ही वेग से नाना प्रकार के भाव और रीति-रिवाज सारे देश में फैल रहे हैं। अमृत आ रहा है और उसी के साथ-साथ विष भी आ रहा है। क्रोध, कोलाहल और रक्तपात आदि सभी हो चुके हैं—पर इस तरंग को रोकने की शक्ति हिन्दू समाज में नहीं है। यंत्र द्वारा लाये हुए जल से लेकर हड्डियों से साफ की हुई शक्कर तक सब पदार्थों का बहुत मौखिक प्रतिवाद करते हुए भी हम सब चुपचाप उन्हें उदरस्थ कर रहे हैं। कानून

के प्रबल प्रभाव से अत्यन्त यत्न से रक्षित हमारी बहुत सी रीतियाँ धीरे-धीरे दूर होती जा रही हैं—उनकी रक्षा करने की शक्ति हममें नहीं है। हममें शक्ति क्यों नहीं हैं? क्या सत्य वास्तव में शक्तिहीन है? **सत्यमेव जयते नानृतम्**—'सत्य की ही जय होती है, न कि झूठ की'—यह वेदवाणी क्या मिथ्या है? अथवा जो आचार पाश्चात्य शासन-शक्ति के प्रभाव में बहे चले जा रहे है, वे आचार ही क्या अनाचार थे? यह भी विशेष रूप से एक विचारणीय विषय है।

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय— नि:स्वार्थ भाव से, भक्तिपूर्ण हृदय से इन सब प्रश्नों की मीमांसा के लिए यह 'उद्‌बोधन' सहृदय प्रेमी विद्वत समाज का आह्वान करता है एवं द्वेषबुद्धि छोड़, व्यक्तिगत, सामाजिक अथवा साम्प्रदायिक कुवाक्य-प्रयोग से विमुख होकर सब सम्प्रदायों की सेवा के लिए ही अपना शरीर अर्पण करता है।

कर्म करने का अधिकार मात्र हमारा है, फल प्रभु के हाथ में है। हम केवल प्रार्थना करते हैं—'हे तेजस्वरूप! हमको तेजस्वी बनाओ; हे वीर्यस्वरूप! हमको वीर्यवान बनाओ; हे बलस्वरूप! हमको बलवान बनाओ।'

● ● ●

[स्वामी जी ने यह निबंध 14 जनवरी, 1899 ई० से प्रकाशित होने वाले रामकृष्ण मिशन के बंगला पाक्षिक पत्र 'उद्‌बोधन' (जिसने बाद में मासिक रूप धारण कर लिया था) के उपोद्‌घात के रूप में लिखा था।]

कहानी
एवं
यात्रा-वृत्तांत

उसने कहा था

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

लेखक परिचय :

इनका जन्म जयपुर में सन् 1883 ई० में हुआ। ये संस्कृत के साथ ही अंग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे। 'गुलेरी' जी मुख्यत: कहानीकार और निबंधकार थे। पुरातत्व, दर्शन, ज्योतिष, इतिहास, साहित्य, भाषाविज्ञान आदि के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान भी थे। ये प्रथमत: अजमेर के मेयो कॉलेज के अध्यापक पद पर कार्यरत थे, बाद में काशी के संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक बनाये गये। 1900 ई० में जयपुर से आपने 'समालोचक' नाम से पत्र निकाला था। 1911 ई० में 'भारत-मित्र' पत्रिका में इनकी पहली कहानी, 'सुखमय जीवन' प्रकाशित हुई। दूसरी कहानी 'बुद्धु का काँटा' तथा तीसरी कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती पत्रिका में 1915 ई० में प्रकाशित हुई। वे मात्र तीन कहानियाँ लिख कर कहानी क्षेत्र में अमर हो गए। इनके कुछ निबंध हैं— कछुआ धर्म, मारेसि मोहि कुठाऊँ आदि। ये दोनों निबंध काफी प्रसिद्ध हुए थे। गुलेरी जी की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। निबंध में गम्भीर से गम्भीर विषय को भी उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

इनकी शैली चुटीली, गम्भीर, व्यंग्यात्मक तथा प्रभावोत्पादक है।

इनकी कहानियाँ सामाजिक, वातावरण प्रधान हैं। चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक पद्धति का निर्वाह हुआ। मुख्य संवेदना प्रेम और कर्त्तव्य की उदात्तता को लेकर है। संवाद लघु, रोचक तथा नाटकीय हैं। कहानीकार को कौतूहल व उत्सुकता बनाये रखने में सफलता प्राप्त हुई है। 'उसने कहा था' कहानी में कहानी कला की प्रौढ़ता झलकती है, इसीलिए उसकी गिनती हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में की जाती है।

इनकी मृत्यु 12 सितम्बर 1922 ई० को बनारस में हुई।

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर में बम्बूकार्ट वालों का मरहम लगायें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना माई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेंटो, खच्चर और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को

हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—'हट जा, जीणे जोगिए; हट जा करमा वालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा, लंबी वालिए।' समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियां। दुकानदार एक परदेशी से गुँथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहां हैं?'

'मगरे में,—और तेरे?'

'मांझे में,—यहां कहां रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।'

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकरा कर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहां, या दूध वाले के यहां, अकस्मात दोनों मिल जाते। महीने भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—'हां, हो गई।'

'कब?'

'कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू!' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर

अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

(२)

'राम-राम, यह कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियां अकड़ गई। लुधियाने से दस गुना जाड़ा, और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं,—घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहां दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जायेगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है—'तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था— चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो— '

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते। क्यों?' सूबेदार हजारासिंह ने मुस्करा कर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?'

'सूबेदारजी, सच है' लहनासिंह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।'

'उदमी' उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो।

ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस बीघा जमीन यहां मांग लूंगा और फलों के बूटे लगाऊंगा'

'लाड़ी होरां को भी यहां बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम— '

'चुपकर। यहां वालों को शरम नहीं।'

'देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊं। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो। आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने-मराने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हां भाइयो कैसे—

दिल्ली शहर ते पिशौर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगां दा बपार मडिए;
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए—
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं।
कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए
हुण लाणा चटाका कदुए नुं।।

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात हो गई है। अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा:

'क्यों बोधा भाई, क्या है?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपकँपी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए— '

'हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुन कर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?' यों कह कर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और अपना खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—'सूबेदार हजारासिंह!'

'कौन? लपटन साहब? हुकुम हुजूर!' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहां मोड़ है वहां पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहां दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले, उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगे। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

‘लो तुम भी पियो।’

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—‘लाओ, साहब’। हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहां उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

‘क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएंगे?’

‘लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?’

‘‘नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहां? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गए थे—‘हां, हां’—वही जब आप खोते (गधे) पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था? ‘बेशक, पाजी कहीं का’—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में से निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायंगे। ‘हां, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।’ —ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?’’

‘‘हां, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?’’

‘‘पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ’’—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

‘कौन? वजीरासिंह?’

‘हां, क्यों लहना? क्या, कयामत आ गई? जरा तो आँख लगने दी होती!’

(४)

‘होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।’

‘क्या?’

‘लटपन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। ससुरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है?’

‘तो अब?’

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होड़ा कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो की एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं— '

'ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस बख्त यहां सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लटपन साहब की खबर लेता हूँ।' 'पर यहां तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौटकर खाई के मुहान पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले।तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आह! माई गाड" कहते हुए चित हो गए। लहनासिंह ने तीन गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है। आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिना डैम के पांच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानो जाड़े से बचाने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखे चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा (खटिया) बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उनमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है।

डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूंड दी और गांव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गांव में अब पैर रखा तो— '

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया— "क्या है?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कस कर बांधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। वहां थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनिटों में वे—

अचानक आवाज आई—"वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!!" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खा दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुष!!!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्यँ' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरंत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुंचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहां पहुंच जायेंगे, इसीलिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गई। सूबेदार ने लहनासिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे

देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—

''तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनीजी की सौगन्द है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।''

''और तुम ?''

''मेरे लिए वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियां आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।''

''अच्छा, पर— ''

''बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उननु कहा था वह मैंने कर दिया!''

गाड़ियां चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—''तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?''

''अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।''

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। दर्द हो रहा है'

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते है; समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया है। दही वाले के यहां, सब्जीवाले के यहां, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा— ''हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू ?'' सुनते ही लहनासिंह को दु:ख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

''वजीरासिंह, पानी पिला दे''।

× × ×

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहां रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहां पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला—लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं। बुलाती हैं। जा मिल आ। लहनासिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा— असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं'।

''तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई... देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—''

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था'।

× × ×

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—''मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम स्त्रियों की एक घंघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार हुए, पर एक भी नहीं जिया''। सूबेदारनी रोने लगी। ''अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में चल गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।''

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला'—'उसने कहा था'

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी पर रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

''कौन ? कीरतसिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हां'।

'भइया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने जांघ पर मेरा सिर रख ले।'

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के आषाढ़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।''

वजीरासिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेल्जियम—68 वीं सूची—मैदान में घावों से भरा—नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

(प्रथम प्रकाशन : **सरस्वती : जून, 1915 ई०**)

● ● ●

मुर्दों की दुनिया

कमलेश्वर

लेखक परिचय :

कमलेश्वर जी हिन्दी नई कहानी के प्रमुख लेखक हैं। इनका जन्म 6 जनवरी 1932 ई० को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी में हुआ था। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिन्दी) परीक्षा उत्तीर्ण किया। इन्होंने 'विहान', 'सारिका', 'दैनिक जागरण', दैनिक भास्कर' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इन्होंने हिन्दी सिनेमा में पटकथा एवं संवाद लेखक के रूप में भी कार्य किया। आँधी, मौसम, छोटी सी बात, रंग-बिरंगी, दि बर्निंग ट्रेन आदि फिल्मों की पटकथा एवं संवाद इन्होंने लिखे। दूरदर्शन के महानिदेशक के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। कथाकार, उपन्यासकार, पत्रकार के रूप में इन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा की।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं — राजा निरबंसिया, खोई हुई दिशाएं, नीली झील, मांस का दरिया, आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ है। जिन्दा मुर्दे व वही बात, काली आँधी आदि उनके कहानी संग्रह हैं। कितने पाकिस्तान, डाक बंगला, समुद्र में खोया हुआ आदमी, आगामी अतीत आदि इनके उपन्यास हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने आत्मकथा, यात्रावृतांत एवं संस्मरण लेखन भी किया है। दूरदर्शन धारावाहिकों चन्द्रकांता, युग, बेताल पचीसी, आकाश गंगा, इत्यादि की पटकथा का लेखन भी किया है।

कमलेश्वर जी नई कहानी आन्दोलन के अग्रणी रचनाकार थे। उन्होंने तेजी से बदलते समाज का एवं बदलते मूल्य बोध का संवेदनशील एवं मार्मिक चित्रण किया है। महानगरीय सभ्यता में मनुष्य के अकेलेपन की पीड़ा को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। उनकी रचनात्मक विकास यात्रा में बोध के विभिन्न संदर्भ और जीवन के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास पर उन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' सम्मान से भी सम्मानित हुए। इनकी मृत्यु 27 जनवरी 2007 ई० को दिल का दौरा पड़ने से फरीदाबाद में हुई।

गरमी शुरू हो गई। मोटर के अड्डे के सामने वाले कुएँ पर पिआऊ बैठा दिया गया था। नरायन पण्डित ने चौड़े मुँह के चार-पाँच मटके धरे, ईंटों के पक्खे पर सागर रखे, बल्ली की खपाँच की नाली बनाए, सागर से पानी उड़ेलते रहते और प्यासे आ-आकर, नीचे पड़ी पटिया पर घुटने मोड़कर चुल्लू से पानी पीते और चले जाते। सामने इमली के भारी-भरकम पेड़ तले दो-तीन मोटरें खड़ी रहतीं, जिनमें से एक-आध की मरम्मत होती रहती।

एटा–कुरावली का अड्डा कहलाता है यह! कुछ पत्थरवालों की दूकानें यहाँ हैं, जो दिन–भर लाल–लाल पत्थरों पर छेनियाँ घिसते और पत्थर को चक्की, सिल या लोढ़े की शक्लें प्रदान करते रहते। मोटरों के क्लीनर और ड्राइवर या तो इमली की छाँह में पड़े सोते, या मोटर की मोटी–मोटी गद्दियाँ बिछाकर, जोड़–पत्ता खेलने में मशगूल रहते।

मोटर छूटे काफी देर हो चुकी थी; इसलिए सब कुछ शान्त सा था। नरायन पण्डित ने 'हे राम' कहते हुए जमुहाई ली, जिसमें शब्द बिगड़कर 'हराम' हो गया। जोड़–पत्ता खेलने वाला जमघट अपनी चालों में डूबा हुआ था। तख्त पर उकड़ूँ बैठे, जालीदार बनियान पहने निसार के कानों में पण्डित की आवाज पड़ी तो एकदम अपने बकरे को छनबिछिया खिलाते–खिलाते रुककर बोल पड़ा, "एक फंकी और लगे महाराज! लाओ, जरा हम भी देखें तुम्हारी ओंयछा की तमाखू। चूना–वूना है डिबिया में कि चाट गए?"

"तुम तो अपनी लीदी तमाखू खाओ भरमुँह, यह भला तुम्हारे मुँह लगेगी! कहाँ इस तमाखू की एक चुटकी और सुरसा–सा तुम्हारा मुँह! ऊँट के मुँह में जीरा..." कहकर नरायन पण्डित हथेली पर रखी तमाखू रगड़ने लगे।

"वाह रे महाराज! बस अंगुल–भर का करेजा है तुम्हारा; जरा–सी तमाखू में घिस्सा दे गए!" निसार ने कहा और अपने तहमद को घुटने तक सरका, बकरे को छनबिछिया खिलाने में उलझ गया।

तभी कंकड़ की सड़क के किनारे गद्दे–जैसे नरम और बेहद गरम धूल को पार करके आते हुए ठेकेदार ने पूछा, "कुरावली वाली लारी कब तक आएगी, निसार मियाँ?"

निसार ने खड़ी नजर से ठेकेदार को ताका और छनबिछिया की फली तोड़ने लगा, जो चाँदी के रौनों की तरह झनझना उठीं।

"बताया नहीं तुमने, कब तक आएगी?" ठेकेदार ने फिर पूछा।

"यों पूछो न, मियाँ–वियाँ क्या जोड़ देते हो?" निसार ने जवाब दिया और फिर जैसे खुद से कहने लगा, 'भला बताइए, क्या दस्तूर है!' फिर उसकी तरफ नजर घुमाकर बोला, "अब आने वाली है घण्टे–आधे घण्टे में। क्यों, कोई आनेवाला है क्या?"

"हाँ।" कहकर ठेकेदार पियाऊ की ओर बढ़ गया।

निसार ने अपने बकरे के पुट्ठे सहलाये और पिछली टाँगों को दबाने लगा। फिर पुचकारते हुए, बड़े प्यार से उसकी जाँघ पर एक थपकी दी। बड़ा निराला बकरा था नूर, यही नाम था उसका। बाँकी चाल और नन्हें–नन्हें सियाह खुर, जिन पर इस तगड़ी और भरी हुई काठी का भार; जैसे पुराने जमाने की कोई तन्दुरुस्त चीनी लड़की।

निसार ने गर्व से नूर को देखा और बकरे ने अपनी गरदन में कड़ापन लाते हुए ऐसे सर उठाया, जैसे बबर शेर हो। उसकी चमकती काली पुतलियाँ और मेढ़े की तरह छल्लेदार सुडौल सींग, दूधिया बाल! उसकी गरदन को बाँहों में भरते हुए निसार गदगद–सा बोल पड़ा, 'जियो मेरे शेर, मर्द बच्चे!"

तभी इमली के नीचे जमी महफिल में झगड़ा हो गया। राजाराम कुछ कह चुका था। नाथूसिंह ड्राइवर झपटते हुए चीखता जा रहा था ''बेईमान बनाता है और ऊपर से गाली, खून पी... !'' सब खेल छोड़कर बीच में पड़ गए। ताश के पत्ते इधर-उधर बिखर गए, रेजगारी अपनी जगह पड़ी थी।

''अब देख लो, मैंने कोई तू-तड़ाक, गाली-गुफ्तारी की थी, जो हाथापाई पर उतर आए?'' राजाराम एक तगड़े ड्राइवर की ओट छिपते हुए कह रहा था।

तभी निसार चीख उठा, ''औरत की तरह क्या मिमियाता है बे, मर्द की तरह बोल! बेईमान ठहराता है, तो ढुकता क्यों हैं जनानों की तरह?''

निसार की ललकार ने काम किया; सब खामोश हो गए, और दूर चिलचिलाती सड़क पर धूल का अम्बार उड़ाती मोटर आती दिखाई पड़ी।

•

अड्डे पर हलचल मच गई। चुस्की बर्फवालों ने अपने-अपने ठेले पटरी पर लगाने शुरू कर दिए। बर्फ की सिल्ली पर छेनियाँ बज उठीं और बुरादा धोकर बर्फ रन्दे पर रख ली गई। कपड़े का गत्ता निचोड़कर बर्फ के माथे पर पट्टी-सी चढ़ गई। सोडावाटर की बोतलों पर पानी छिड़क कर ताजा कर दिया। हर तरफ रौनक आ गई थी।

खड़खड़ाती-गुर्राती लारी आकर रुकी। धूल में बिलकुल ढँकी। सवारियाँ कपड़े झाड़ते उतरीं। गाँव के लोग फतोई पहने, तेल से चिकनी लाठी पकड़े, उसी में खाने की छोटी-सी गठरी लटकाए। आखिर वह भी भीड़ में सटकर ही निकली।

''साबित्तरी, आ गई! ललुआ नहीं आया साथ?'' ठेकेदार ने अपनी लड़की के पास जाते हुए पूछा।

निसार की आँखें साबित्तरी पर जा टिकीं! एक मिनिट देखता रह गया। भरा हुआ शरीर, औसत औरत से काफी लम्बी और तगड़ी, उठी हुई नाक, कसकर बाँधे हुए बाल, दाँतों की दरार में मिस्सी की लकीरें, पुष्ट कलाई में रंगीन चूड़ियाँ, भरी हुई हथेली। पास खड़े क्लीनरों में फुसफुसाहट हुई, आपस में फबतियाँ कसी गईं। उसके बदन को देखकर बर्फवालों ने उसकी पसन्द की पहचान की और चिल्लाने लगे, ''सोडा-लेमन, नीबू का शरबत... ठण्डा बरेफ!''

निसार की नजरों से प्रशंसा झाँक उठी। उसने टूलबक्स से अपना बेल-कढ़ा कुरता निकाला और पहनकर बाँहें समेटने लगा। ठेकेदार साबित्तरी का टीन का बक्सा उठाकर चलने लगा, तो निसार ने टोका, ''जरा ठण्डे हो लेते, ठेकेदार! धूप में कब से परेशान घूम रहे थे!''

साबित्तरी ने निसार को देखा, और ठोस कदम रखती हुई बढ़ने लगी।

निसार पीछे से देखता रह गया—साबित्तरी की मरदानी चाल, कंकड़ की ऊँची-नीची सड़क पर पड़ने वाले उसके जमे हुए कदम, जिनसे मानो उभरे कंकड़ दब रहे हों।

धीरे-धीरे सब खामोश हो गया। धूल के गद्दे में फंसे पहियों को निकालती और पेट्रोल की गन्ध छोड़ती

आई हुई लारी स्टार्ट होकर इमली तले खड़ी हो गई। जाने वाली लारी उस जगह लग गई। भराई शुरू हो गई थी। मोटर का हार्न और निसार की आवाज एक के बाद एक गूँज उठती। वह चीख रहा था, ''एटा-कुरावली! एटा-कुरावली!'' उसका गला सूख गया, पिआऊ के पास कीचड़ में लेटे, हाँफते मरियल कुत्तों को खदेड़ता हुआ, वह पानी की धार के सामने झुक गया।

''यह मेहरारू शायद ठेकेदार की बिटिया थी।'' पानी पिलाते हुए पण्डित ने जैसे कुछ याद करते हुए कहा, ''तीन बरस पहले बेवा हुई थी। हमारे गाँव से चार कोस पर ससुराल है इसकी।''

निसार को गौर से सुनते देख, वह कहता गया, ''इसी के पीछे इसके आदमी का कतल हुआ; पर रोआँ तक न छू पाया कोई, बड़ी मरदानी है!''

●

शाम को बकरे को लिये निसार अपनी कोठरी की तरफ चला तो नुक्कड़ पर ठेकेदार के छप्पर में बकरी देखकर रुक गया। साबित्तरी का ध्यान आते ही चलने लगा, देखा साबित्तरी उसे खड़ा देख चुकी है, वह बकरी के लिए पीपल के पत्ते डालने उधर ही आ रही थी। सकपकाकर निसार पूछ बैठा, ''यह बकरी कब खरीदी ठेकेदार ने?''

साबित्तरी ने उसकी ओर देखा, तो न जाने कैसी मुद्रा बन गई, चेहरे का हर हिस्सा सिकुड़ा और फैल गया। फिर जैसे उसकी बात को अहमियत देती हुई बोली, ''अभी साल-भर से बड़ी नहीं मालूम पड़ती।'' और उसने बकरी का होंठ मोड़कर कच्चे दानों की तरह उसके सटे हुए दाँत खोल दिये, और उसका मुँह निसार की तरफ करते हुए बोली, ''क्यों, है न?''

निसार को जैसे पैर जमाने का मौका मिल गया हो, झट आगे बढ़कर निकट पहुँचते हुए उसने बकरी के दूधिया दाँतों पर पारखी की तरह आँखें गड़ा दीं। फिर तो सिलसिला चल निकला। अपने बकरे के बारे में सब कुछ साबित्तरी को सुना गया। साबित्तरी बोली, ''बकरा पालने से क्या फायदा? अरे, कोई कसाई पचास-साठ दे देगा; बकरी पालते तो जिसम पर चिकनाई आती!''

''अकेले फक्कड़ के घर कौन खटराग करे, इस नूर को मैंने बेचने के लिए नहीं पाला है। अरे, मर्द बच्चा है, दिन-भर साथ तो रहता है।'' निसार ने कहा।

काफी देर बातें चलती रहीं। ठेकेदार भी आ गया था। उस रात जब निसार घर लौटा, तब साबित्तरी उसके लिए नई न रह गई थी और वह सोच रहा था—''बस, एक ही औरत है हजारों में एक! बात करती है तो आजादी से, चलने-फिरने तक में लापरवाह खुलापन है!

इसके बाद रोज ही वह अपने नम्बर की गाड़ी भरकर और अपने कमीशन के पैसे लेकर साबित्तरी के पास आ बैठता। सिर्फ साबित्तरी होती। कभी-कभी कुछ लोग और आ जाते, जिनसे साबित्तरी की जान-पहचान हो चुकी थी। निसार और साबित्तरी के बारे में कुछ लोग फुसफुसाने लगे थे। उस दिन दोपहर में निसार छप्पर का टट्टर लगाए पास बैठा था। लू काफी तेज चल रही थी। गरमी बहुत थी। साबित्तरी एक हलकी पुरानी धोती पहने पास बैठी अपनी फतोई में बटन टाँक रही थी। निसार गहरी नजरों से उसको देखता

और उसकी आँखों की चमक बढ़ जाती। आखिर उससे न रहा गया और उसने साबित्तरी का हाथ पकड़कर, बाँह जमीन पर टिका दी, और अपने हाथों की उँगलियों को ऐसे फैलाकर, जैसे गला घोंटने के लिए हाथ उठे हों, साबित्तरी की बाँह के इर्द-गिर्द उँगलियों लपेट दी। सामने दोनों अँगूठे सींग की तरह निकले रह गए, तो बोला, ''हूँ, मैं तो समझता था कि तुम्हारी बाँह कम-से-कम दो बालिश्त तो मोटी होगी, यह तो आधी भी नहीं निकली! बाँह पर गोश्त है कि मड़ा हुआ आटा...बिलकुल थल-थल!''

साबित्तरी जैसे गस्साई हो, बोली, ''मेरी बाँह से तुम्हें मतलब, लोहा है तो, आटा है तो!'' और फिर कुछ सोचकर हँस पड़ी और हँसती रही। निसार भौंहें टेढ़ी किए ताकता रहा।

तभी टट्टर खिसकाकर गोरख भीतर आया। सकुचाया, झेंपा भी, पर जैसे कुछ पकड़ पा गया हो, व्यंग्य से मुस्कराकर आँखें गोल करते हुए और निसार को ताकते हुए बोला, ''शायद ठीकेदार नहीं हैं!''

निसार अपने हाथ साबित्तरी की बाँह पर से हटा चुका था पर उँगलियाँ जैसे थरथरा गई थीं। साबित्तरी ने पैर सरकाया तो एकदम रुक गई। निसार से बोली, ''अरे जरा पैर की उँगली खींचना, एकदम नस चढ़ गई शायद।'' फिर अपने-आप पैर झटकते हुए ठीक होकर बैठ गई। गोरख ने निसार को चिढ़ाने के स्वर में कहा, ''अरे मियाँ, वह तुम्हारा चरकटा बच्चन अड्डे पर तुम्हें खोज रहा था। क्या बात है, आजकाल तुम्हारे पैसे से उसकी पहलवानी चल रही है, और तुम भी सब वसूल कर लेते हो...'' कहते-कहते गोरख ने कनखी से साबित्तरी को देखा और बात अधूरी छोड़ दी। फिर वह चढ़ते-उतरते रंगों से तबदील होते निसार के चेहरे को देखने लगा। साबित्तरी ने सब सुना। वह बारी-बारी से निसार और गोरख की तरफ उत्कण्ठा-भरी दृष्टि से देख रही थी।

निसार एकदम अपना तहमद सँभालते हुए उठकर खड़ा हो गया। उसके सीने में कोई चीज फूल रही थी। होंठ चबाते हुए चलने लगा तो न रहा गया। शायद इस तरह चल देना कोई कमजोरी समझ ली जाए। साबित्तरी तो जैसे उसके दिमाग से उतर चुकी थी; बोला, ''क्या वाहियात खयालात हैं तुम लोगों के! बच्चन हजार में एक मर्द है, पैसे से बेचारा कमजोर पड़ता था, पहलवानी के लिए खातिब चाहिए, खातिब! है कोई कस्बे-भर में उस-सा जवान पट्ठा?''

गोरख ने व्यंग्य से 'हूँ' कर दिया; साबित्तरी गम्भीर थी। निसार अपने बकरे नूर की डोरी खोलने लगा, तो साबित्तरी बोली, ''जब हफ्तेभर से यहाँ है तो बँधा रहने दो, कोई आज की धूप में ही नहीं मर जाएगा!''

वह चुपचाप नीचे उतर गया। उतारी हुई बनियाइन भी लेना भूल गया। साबित्तरी ने उसकी मैली जालीदार बनियाइन एक ओर सरका दी, देखकर गोरख बोला, ''साबित्तरी, कितनी सरम की बात है, एक मुसलमान मलिच्छ की लहदी छूना और फिर कौन नहीं जानता निसार के करम...मोटर का एजेण्ट, कोई इज्जत का पेशा है? दिन-भर चरकटों के पीछे पड़ा रहता है, वे सब उसके यार-दोस्त हैं। अखाड़े के लफंगे लड़के दिन-भर साथ लगे रहते हैं। फकद्दम है, सो सब उन्हीं पर फुँकता है।''

साबित्तरी बोली, ''हुआ करे, हमसे क्या, बैठता है यहाँ, कौन-सा सोना चुरा ले जाता है। बस बैठकबाज है वह, पैसे पर ध्यान नहीं देता, दिन-भर गप्पें हाँकेगा। गामा, रुस्तम और फिरंगी पहलवानों की बातें करेगा, इधर-उधर के किस्से सुनाएगा या नूर को हरी अरहर खिलाता रहेगा, बस!'' पर इतना कहते हुए साबित्तरी अपना ही सम्मान बचाने की अधिक चेष्टा कर रही थी।

गोरख उसके इसी भाव को न सह सका, कहने लगा, ''देखना है, कब तक चलेगी निसार की यह नवाबी! आर्डर हो गया है, अगले महीने से सरकारी मोटरें इस लाइन पर चलेंगी और महीना खत्म होने में हफ्ता-भर तो रह गया है। तब देखना है, निसार की जालीदार बनियाइन, चरकटों का खातिब और बकरे की हरी अरहर!''

और साबित्तरी अपने में सोच रही थी—''वैसे निसार चाहे जो हो, पर इतने दिन हुए यहाँ बैठते, कोई वैसी बात नहीं दिखाई दी, आज बाँह भी पकड़ी, तो ताकत देखने के लिए, जैसे बदन से और कोई मतलब नहीं। नूर को रोज चार मील दौड़ाता है, हाँफते हुए सुबह लौटा था तो बाँधते हुए कह रहा था—दौड़ाऊँ न तो चरबी चढ़ जाएगी इसपर। फिर किस काम का रह जाएगा। ताकत और चरबी के मोटापे में बड़ा फर्क होता है साबित्तरी! बहुत साफ बात कहता है।

और अड्डे पर बैठा निसार ख्यालों में डूबा था—'साबित्तरी के पास दिन-भर के साथ के लिए जाता हूँ, उसमें ताजगी जो है, चुस्ती और अकड़ जो है, बदन की अकड़! इन सब डिराइवरों और किलीनरों का जोश-खरोश तो दारू का है, चरस-अफीम का है, मिनिट-दो मिनिट रहता है; बरसाती नदी-से उफनते हैं फिर नाली-से बहने लगते हैं। सुबह का वक्त तो अखाड़े पर कट जाता है। बच्चन के पुट्ठे और शेर-सी कमर, गफूर की रस्सेदार गठीली बाँहें और हाथी-सी गरदन, सब बेजोड़ हैं। पर अखाड़ा तो धूप निकलते-निकलते बिखर जाता है। फिर क्या करूँ? थोड़ी देर बाद अपने नम्बर की मोटर भर दी, फिर इसके बाद? अगर साबित्तरी के पास बैठ लेता हूँ, तो बुरा क्या है? दिनभर साबित्तरी का साथ और रातभर नूर का साथ! साबित्तरी है भी बड़े खुले दिल की औरत! तभी इतनी जल्दी इतने लोग उठने-बैठने लगे उसके पास!' सोचते-सोचते एकदम दिल न जाने क्यों भर आया, और तबीयत हुई कि नूर को खोल लाए, अकेला होगा वहाँ!

तभी शोर मच उठा। आई हुई मोटर के टायरों से कंकड़ बुदबुदाये और धूल का धुआँ फैल गया। आई हुई मोटर का एक पहिया कच्ची पटरी पर धूल के मखमली-मटमैले गद्दे पर बेलबूटेदार निशान छोड़ता निकल गया। मोटर रुकी और उसमें से मोटरों के मालिक माखनलाल उतरे। सब कर्मचारियों ने घेर लिया उन्हें। पता चला कि बहुत कोशिश करने पर भी सरकार ने बात नहीं मानी। अब पहली तारीख से सरकारी बसें इस लाइन पर चलेंगी। इसीलिए वे 'प्रायवेट कैरियर' का लैसन्स लेने लखनऊ जा रहे हैं। शायद एक-आध ड्राइवर खप जाएँ उनमें, बाकी लोग बेकार हो जाएँगे।

निसार सुन्न-सा रह गया। दिल और बैठ गया। भीतर कोठरी में जाकर सीट की एक गद्दी बिछाकर लेट रहा, उदास-था। सिर में कुछ दर्द था। साबित्तरी का ध्यान आया, तो लगा जैसे वह अकेला ही है। सोचने लगा—गोरख की बैठक बहुत है उसके पास। गोरख की बातों में भी ऐसा गुमान है, जैसे साबित्तरी पर उसका पूरा हक हो। गोरख उसे सिर्फ औरत मानता है, औरत से ज्यादा कुछ नहीं। और साबित्तरी भी जरूर एक औरत की ही तरह उसके साथ पेश आती होगी; जरूर उसके वहशी इरादों के सामने घुटने टेक देती होगी, आखिर औरत है वह, वह मर्द नहीं हो सकती। उसके बदन में अकड़ है, पर गोरख के सामने वह भी खो जाती होगी, उसके दिल में वही मैलापन, कमजोरी जरूर होगी! आदमी आदमी है, औरत औरत। साबित्तरी आखिर औरत है!' सोचते-सोचते वह न जाने कब सो गया। आँख खुली, तब रात झुक आई थी।

बाहर निकला, अड्डे पर सन्नाटा था। छप्पर के लट्ठे में गड़ी कील पर एक बीमार-सी लालटेन जल रही थी, जिसके प्रकाश में लट्ठे के काले-काले पपड़े अजगर के काले पपोटों की तरह चमक रहे थे। मोटर की छतों पर क्लीनरों ने बिस्तर लगा लिये थे। अड्डे के वीरानेपन में मोहक खामोशी थी; वही खामोशी, जो सुबह होते-होते खड़खड़ाहट, हॉर्न की आवाज और लारियों की ढीली टीन की बॉडी के शोर में दुबक जाती। दोपहर में ताश-पत्तों, गालियों और सस्ते मजाकों में छुप जाती, शाम को पैसों के लिए झगड़ते और ऊँची आवाज में हिसाब मिलाते मुन्शियों की इन्सानियत की तरह मुरदा रहती, और रात होते थके-माँदे मेहनतकश लोगों को गोद में ले, चिन्ताहीन-सी छा जाती।

●

निसार घर की तरफ चल दिया, नूर को लेने; जब साबित्तरी के छप्पर में पहुँचा, अजीब-सा दृश्य सामने था। दो-तीन सिपाही तलाशी ले रहे थे, सामान उलट-पुलट रहे थे। ठेकेदार कमर पर हाथ रखे, सिर झुकाये पक्खे का सहारा लिये खड़ा था, और साबित्तरी बड़बड़ा रही थी, ''कोना-कोना देख डालो, पर चीज का नुकसान न होने पाए! ए हवलदार साहब! उसमें काँच की चूड़ी है, हाँ...'' काफी भीड़ जमा हो गई थी। निसार सारी घटना का कोई सिलसिला नहीं बैठा पाया। इसीलिए कुछ पूछना ठीक न समझ, वह नूर को खोलने लगा। सिपाही ठेकेदार को लेकर थाने की तरफ चल दिए। निसार चुपचाप-सा नूर को लेकर घर की तरफ चला गया। सोचा, सुबह अकेले में साबित्तरी से पूछ लेगा।

रात को खाट के पाये से नूर को बाँधकर लेट रहा, तो ख्याल आया कि महीना खतम होने में पाँच दिन रह गए हैं। तब वह यहाँ क्या करेगा? कौन-सा काम मिल सकेगा इस छोटे-से कस्बे में? नूर का पेट कहाँ से पलेगा? उसने लेटे-लेटे बकरे की गरदन घुमाई और उसका मुँह अपने गालों से रगड़कर अपनी गरदन से चिपका लिया। धीरे-धीरे आ गई।

●

सुबह एक छोटी-सी गठरी बाँधे, नूर की रस्सी पकड़े, वह साबित्तरी के छप्पर में पहुँचा। दिन काफी चढ़ आया था। साबित्तरी देखते ही पूछ बैठी, ''क्यों, आज नूर को दौड़ाने नहीं ले गए? चलों अच्छा किया, चरबी चढ़ेगी, तो खासे दामों में बिक जाएगा!''

निसार को जैसे बात काट गई, पर मजबूरी थी, बोला, ''इसी पहली मोटर से करीमगंज जा रहा हूँ। यहाँ तो अब धन्धा खत्म हो रहा है; वहाँ मेरे एक मामू हैं। शायद कोई नया जरिया निकल आए। दो-तीन रोज में आ जाऊँगा। नूर को तुम्हें सौंपे जा रहा हूँ।'' कहते-कहते उसने बकरे की डोरी टट्टर से बाँध दी।

साबित्तरी ने साधारण तरीके से ताका, फिर बोली, ''मोटर जाने में देर है अभी।''

''मोटर काफी तड़के छूटती है, यह लारी छूट गई तो दिन-भर खराब हो जाएगा!''—कहते-कहते वह चलने लगा। कदम तेज होते गए और लम्बे-लम्बे डग भरता, वह कंकड़ की सड़क पर मुड़ गया। नूर गरदन उठाए मासूमियत से उधर ताक रहा था।

निसार को करीमगंज से वापस आने में दस रोज के करीब लग गए। वहाँ से वह एक नजदीक के गाँव चला गया था, काम की तलाश में। यह गाँव ताजिया बनाने वालों का गढ़ था। कुछ काम मिल जाने की उम्मीद थी यहाँ, क्योंकि दूर-दूर तक के ताजिए यहाँ बनने आते थे और काम सालभर चालू रहता।

इक्के के सफर ने उसका जोड़-जोड़ खोल दिया था। मोटर के अड्डे पर आकर जब इक्का रुका, तो जैसे वह भौंचक्का रह गया। पहले से जानते हुए भी सब-कुछ उसे बड़ा अजीब-सा लगा। दुनिया बदल गई थी। चमचमाती सरकारी बसें खड़ी थीं। खाकी वरदी पहने और तश्तरी की तरह हैट लगाये कुछ कमजोर बदनवाले लोग इधर-उधर आ-जा रहे थे। पिआऊ वाले नुक्कड़ पर एक शरणार्थी ने शर्बत-लस्सी की दूकान खोल दी थी। लट्ठों पर सधे, टीन के शेड में दो-तीन नीली-नीली बसें खड़ी थीं। इधर-उधर झण्डियाँ लटक रही थीं।

वह अवाक् ताकता रह गया। गहरी ठेस लगी। वह सब कहाँ गया? दिन-दिन-भर लड़ने-झगड़ने पर मिलकर बैठने वाले चेहरे कहाँ चले गए? इमली के नीचे मोटर की गद्दियों पर लगने वाली ताश की महफिल वीरान थी। दिन-दिन-भर मरम्मत होने वाली और रह-रहकर, गुर्राकर रुक जाने वाली लारियों की आवाज खामोश थी। एक तरफ मेज कुरसी पड़ी थीं। नया ही दौर था, नई तरफ की चहल-पहल थी। बसों को देखा, तो अच्छी लगीं; पर यह भी महसूस हुआ कि उन्होंने ही पेट पर लात मारी है। घृणा, पश्चाताप और बेबसी में वह केवल यही सोच पाया था-इन पर कभी पैर न रखूँगा। वह सीधा साबित्तरी के छप्पर की ओर लपका, इस आशा से कि वहाँ वह पुरानापन, वह पहचानी फिजा मिल जाएगी।

पैर रुके और नजर उठी, देखा कोठरी में ताला बन्द। झुँझला-सा उठा वह। बढ़कर बगल वाली दुकान पर पहुँचा, सोनू भुर्जी से पूछा, ''कुछ पता है, कहाँ है साबित्तरी?''

''साबित्तरी?'' सोनू बोला, आजकल सती-सीता और साबित्तरी ही रह गई हैं सब!

बड़ी चलती औरत निकली, हम लोगों का भी मुँह काला करके गई। आज तक इस ठिकाने अफीम-वफीम का चक्कर कभी सुना था?''

''अफीम? क्या हुआ, ठीक ठीक बताओं न!''—निसार ने उत्सुकता से पूछा। ''अरे भाई, हाँ अफीम! वह ससुरी अफीम बेचती थी। सो एक रोज आठ-दस दिन पहले पुलिस को सुराग मिला, तलाशी हुई; पर अफीम बरामद नहीं हुई। तो उस बार तो ठेकेदार को खबरदार करके छोड़ दिया। परसों फिर तलाशी हुई, आधपाव अफीम पकड़ी गई। गोरख देता था और सती साबित्तरी बेचती थी। सो ठेकेदार तो हवालात में बन्द हैं बिचारे, और जब तक पुलिस दुबारा आए, वह गोरख के साथ छू-मन्तर हो गई!''

निसार ने सुना, तो रही-सही शक्ति भी जाती रही। कुएँ की मन पर पैर फैलाकर बैठ गया। कुछ ठीक होते हुए पूछा, ''अच्छा, हमारे बकरे का कुछ पता है? साथ ले गई कि कहीं रख गई है उसे?''

''बकरा तो औने-पौने में बेच गई, उसी जाहिद कसाई के हाथ, सो भला कसाई के सिवा कौन खरीदता जल्दबाजी में? रुपए की दरकार रही होगी!'' सोनू ने निर्लिप्त भाव से कह दिया, जैसे इसमें कुछ असाधारण नहीं था।

निसार ने सुना, सारा खून पानी हो गया; पर एकदम, एक बार जोर से उसकी हड्डियों में कड़ापन आया, खाल में खिंचाव हुआ और दाँती भिंच गई। नाक फूली और भौंहे ऊपर सरक गईं। उसने फटे में हाथ डाला, मुड़े हुए नोट की गड्डी हथेली में आ गई। गिनती में रुपये पचास थे।

बौखलाया-सा, तेज कदमों से वह जाहिद कसाई की दुकान पर पहुँचा। चिक हटायी और भरभरा उठा, कितने में बेचा है उसने नूर को ?''

''पचीस में! लेकिन निसार भाई, मैंने तब खरीदा था, जब उसने यकीन दिला दिया था कि तुम इसे बेचकर गए हो। अल्लाह गवाह है, जो जरा भी झूठ हो इसमें!'' कसाई निसार की दशा देखते हुए और सारी परिस्थिति समझकर, एक साँस में कहता गया था।

''ज्यादा बात से मतलब नहीं, यह लो पचास रुपए, बस! चलो, बकरा खोलो फोरन!''—झुँझलाते हुए निसार ने कहा, और कड़ी नजरों से एक बार उसे ताका, जैसे जरा भी देर होने पर खून ही पी लेगा। कसाई एक क्षण हिचका। मायूसी-भरी नजर उसने निसार पर डाली। निसार बुरी तरह ऊब रहा था।

तभी कसाई बोला, ''लेकिन...लेकिन उसे तो जिबा कर डाला आज सुबह ही, क्या बताऊँ, खुदा कसम सामनेवाली रास है।'' दबी जबान से वह बोला और कहते-कहते रुक-सा गया।

निसार के बदन की हर नस, हर नली की राह जैसे पिघला सीमा गुजर गया हो। उसके हाथ से चिक छूट गई। और उसने देखा—नूर, उसका दिन और रात का अकेला साथी, मर्द बच्चा! बेजोर, बेकस, मरियल, उधड़ी चमड़ी लिए, उलटा लटका, परदानशीन औरत की तरह चिक के पीछे से झाँक रहा था।

किसी तरह उसके पैर उसे अड्डे तक लाये। नसों की मरदानगी, बदन का जोर और अकड़ सब मिट-सी गई थी। नई मोटर-बसों की आवाज में वह जोश न था, उनके इंजन हल की रगड़ से चालू हो रहे थे। उनमें पुरानी लारियों का जोश-खरोश और चीख-पुकार न थी। ड्राइवर और क्लीनर, सब जैसे धीरे-धीरे मरियल और बेजान आदमियों— की तरह घिसट रहे थे। और वह सोच रहा था, क्या जिन्दगी कशमकश, ताजगी और जिन्दादिली की दुनिया से वह मुरदों की दुनिया में कदम बढ़ाने जा रहा है ?

क्या वह करीमगंज जाएगा ? वहाँ ताजिये बनाएगा ? वे ताजिये, जिनके आगे-आगे मुरदों का एक जुलूस चलता है जो छाती पीटते और मरसिये गाते, निरन्तर कब्रिस्तान की ओर बढ़ते जाते हैं।

तिरस्कार से उसका जी भर गया...इन मुरदों की दुनिया में वह नहीं रहेगा...उस जिन्दा रहने के लिए जोश-खरोश और भीड़-भब्बड़ चाहिए।

और अपने पाँवों से धूल उड़ाता वह बस्ती की ओर चला गया।

(मैनपुरी, 1956)

बहता पानी निर्मला

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

लेखक परिचय :

अज्ञेय जी प्रयोगवाद के प्रवर्तक, विख्यात कवि, लेखक, पत्रकार, क्रांतिकारी, चिंतक थे। उनका जन्म 7 मार्च 1911 ई० को उत्तरप्रदेश के देवरिया जिला के अन्तर्गत कसिया गांव में हुआ था। उन्होंने बी.एस.सी. तक शिक्षा प्राप्त की और बाद में स्वध्याय से अंग्रेजी एवं हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने सेना में नौकरी भी की। उन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। वह क्रांतिकारी एवं यायावरी प्रवृत्ति के थे। उन्होंने 'दिनमान', प्रतीक और नवभारत टाइमस में सम्पादन कार्य भी किया। इसके अतिरिक्त प्रथम तारसप्तक (1943), दूसरा तारसप्तक (1951), तीसरा तारसप्तक (1958) और चौथा तारसप्तक (1978) का सम्पादन किया। उन्होंने बंगला, अंग्रेजी साहित्य की कई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय जी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से लगभग आधी शताब्दी तक हिंदी साहित्य को प्रभावित तथा आन्दोलित किया। 'साहित्य अकादमी', 'भारतीय ज्ञानपीठ', 'भारत भारती' तथा यूगोस्लाविया के 'गोल्डेन ब्रेथ' पुरस्कारों से सम्मानित हुए।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए, अरी करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार आदि इनके काव्य संग्रह हैं। विपथगा, शरणार्थी, कोठरी की बात आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी इनके उपन्यास हैं। अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली इनके यात्रा साहित्य हैं। आत्मनेपद, संवत्सर, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, लिखि कागज कोरे, केन्द्र और परिधि उनके निबंध संग्रह हैं। भवन्ती, अंतरा, शास्वती, स्मृतिलेख, स्मृति के गलियारों से इनकी डायरी शैली की रचनाएँ हैं।*

प्रयोगवाद और नयी कविता के इस विशिष्ट कवि का देहान्त 4 अप्रैल 1987 ई० को हुआ।

मुझे बचपन से नक्शे देखने का शौक था। आप समझे कि कुछ भूगोल की तरफ प्रवृत्ति होगी-नहीं, सो बात नहीं, असल बात यह है कि नक्शों के सहारे दूर दुनिया की सैर का मजा लिया जा सकता है। यों तो वास्तविक जीवन में भी काफी घूमा-भटका हूँ, पर उससे कभी तृप्ति नहीं हुई, हमेशा मन में यही रहा कि कहीं और चलें, कोई और नई जगह देखें, और इस लालसा ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ा है। नक्शों से यह

फायदा होता है कि मन के घोड़े पर सवार होकर कहीं चले जाइए, कोई रोक नहीं, अड़चन नहीं, और जब चाहें लौट आइए, या न भी लौटिए–कोई पूछनेवाला नहीं कि हजरत कहाँ रम रहे।

यों तो नक्शों में तरह–तरह के रंगों से कुछ मदद मिलती है यह तय करने कि कहाँ जाएँ–जिसे हरी–भरी जगह देखनी हो वह नक्शों की हरी–भरी जगहों में घूमे, जिसे पहाड़ी प्रदेश देखने हों वह भूरे या पीले प्रदेशों में चला जाए, और जिसे एकदम अछूते, अपरिचित प्रदेश में जाने का जोखिम पसंद हो वह बिल्कुल सफेद हिस्सों की ओर चल निकले–अनादिकालीन बर्फीले मरु–प्रदेशों में, जंगलों में, समुद्र में, समुद्र–द्वीपों में। नक्शों में कहीं लिखा रहता है कि इस प्रदेश का सर्वेक्षण नहीं हुआ है। हिमालय के अनेक भाग ऐसे हैं, या कि 'अगम्य जंगल'–असमिया सीमा–प्रदेश में ऐसे स्थल हैं, जरा कल्पना कीजिए ऐसी जगहों में जा निकलने का आनंद!

लेकिन इससे अधिक सहायता मिलती है जगहों के नामों से। बचपन में एक नाम पढ़ा था 'अमरकंटक'। यह नाम ही इतना पसंद आया कि मैने चुपके से एक कंबल और दो–चार कपड़ों का बंडल बना लिया कि अभी चल दूँगा वहाँ के लिए। वहाँ जाना नहीं हुआ, अभी तक भी अमरकंटक नहीं देखा है और इस प्रकार उसका काँटा अभी तक सालता ही है, पर नक्शे की यात्रा तो कई बार की है, और अमरकंटक के बारे में उतना सब जानता हूँ जो वहाँ जाकर जान पाता। ऐसा ही एक और नाम था तरंगबाड़ी–यों नक्शे में उसका रूप विकृत होकर त्रांकुबार हो गया है। 'तरंगों वाली बस्ती'–सागर के किनारे के गाँव का यह नाम सुनकर क्या आपके मन में तरंग नहीं उठती कि जाकर देखें? कई नाम ऐसे भी होते हैं जिनका अर्थ समझ नें नहीं आता, पर ध्वनि ही मोह लेती है। जैसे 'तिरुकुरंगुड़ि'–नाम सुनकर लगता है, मानो हिरनों का समूह चौकड़ी भरता जा रहा हो। कुछ नाम ऐसे भी होते हैं कि अर्थ जानने पर ही उनका जादू चलता है, जैसे 'लू–हित'। ऊपरी ब्रह्मपुत्र के इस नाम को संस्कृत करके 'लोहित्य' बना लिया गया है जिससे अनुमान होता है कि वह लाल या ताम्र वर्ण की होगी, पर वास्तव में लू–हित का अर्थ है 'तारों की राजकन्या' या ऐसा ही कुछ। ब्रह्मपुत्र का सौन्दर्य जिन्होंने नहीं देखा उनकी तो बात ही क्या, जिन्होंने देखा भी है वे भी क्या इस नाम को जानकर 'तारों की राजकन्या' के तरुण लावण्यमय रूप देखने को ललक न उठेंगे?

''होनहार बिरवान के होत चीकने पात' में कुछ होनहार बिरवान तो नहीं था, पर नक्शों के बगदादी कालीन पर बैठकर हवाई यात्रा करने की इस आदत से यह तो पता लग ही सकता था कि आगे चलकर भी कहीं टिककर नहीं बैठूँगा। बात भी ऐसी है, लगातार कुछ दिन भी एक जगह रहता हूँ तो कुछ अपनी इच्छा से नहीं, लाचारी से और उस लाचारी में बहुत–से नक्शे जुटाकर फिर अपने लिए कोई हीला निकाल ही लेता हूँ। और आप सच मानिए, जीने की कला सबसे पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की कला है–कम से कम आधुनिक काल में, जब मानवजाति का इतना बड़ा अंश या तो प्रवासी है, या शरणार्थी: एक स्थान से दूसरे स्थान, एक पेशे से दूसरे में, एक घर से दूसरे घर, इत्यादि।

यात्रा करने के कई तरीके हैं। एक तो यह कि आप सोच–विचार कर निश्चय कर लें कि कहाँ जाना है, कब जाना है, कहाँ–कहाँ घूमना है, कितना खर्च होगा: फिर उसी के अनुसार छुट्टी लीजिए, टिकट

कटाइए, सीट या बर्थ बुक कराइए, होटल डाक-बंगले को सूचना देकर सुरक्षित कराइए या भावी अतिथियों को खबर कीजिए-और तब चल पड़िए। बल्कि तरीका तो यही एक है, क्योंकि वह व्यवस्थित तरीका है। और इसमें मजा बिल्कुल नहीं है यह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि बहुत से लोग ऐसे यात्रा करते हैं और बड़े उत्साह से भरे वापस आते हैं।

दूसरा तरीका यह है कि आप इरादा तो कीजिए कहीं जाने का, छुट्टी भी लीजिए, इरादा और पूरी योजना भी चाहे घोषित कर दीजिए, पर ऐन मौके पर चल दीजिए कहीं और को। जैसे घोषित कर दीजिए कि आप बड़े दिनों की छुट्टियों में बंबई जा रहे हैं, लोगों को ईर्ष्या से कहने दीजिए कि अमुक बंबई का सीजन देखने जा रहा है, मगर चुपके से पैक कर लीजिए जबरदस्त गर्म कपड़े और जा निकलिए बर्फ से ढके श्रीनगर में।

लेकिन अपनी भी कुछ बातें कहूँ। मैं दूसरे तरीके का कायल हूँ यह तो आप समझ ही गए होंगे। लेकिन जब निकलता ही हूँ, तब एक तीसरा तरीका भी अख्तियार करता हूँ। जैसे कहा तो सबसे यह कि बंबई जा रहे हैं, मगर जब स्टेशन गए तो यह तय करके कि नैनीताल जा रहे हैं और वहाँ से हिमालय के भीतरी प्रदेशों में, और इस तरह जा निकले...शिलांग!

शिवसागर से आगे सोनारी के पास डि-खू नदी की बाढ़ में कैसे फँस गया था, इसका यही रहस्य है।

अंगरेजी में कहावत है कि 'एक कील की वजह से राज्य खो जाता है।' वह यों कि कील की वजह से नाल, नाल की वजह से घोड़ा, घोड़े के कारण लड़ाई, और लड़ाई के कारण राज्य से हाथ धोना पड़ता है। हमारे पास छिनने को राज्य तो था नहीं, पर दाँत माजने के एक ब्रुश और मोटर की एक मामूली-सी ढिबरी के लिए हम कैसी मुसीबत में पड़े यह हमी जानते हैं।

सोनारी एक छोटा-सा गाँव है-अहोम राजाओं की पुरानी राजधानी, शिवसागर से कोई अठारह मील दूर। वहाँ भी नाम के आकर्षण से चला गया था। यों असम में 'सोना' या 'स्वर्ण' बहुत-से नामों में है-सुबनश्री, सोना-भारती वगैरह-और असम भी 'सोनार असम' सोने का असम कहलाता है। बरसात के दिन थे, रास्ता खराब, एक दिन सबेरे घूमने निकला तो देखा कि नदी बढ़कर सड़क के बराबर आ गई है। मैं शिवसागर से तीन-चार मील पर था, सोचा कि एक नया दाँत-ब्रुश ले लूँ, क्योंकि पुराना घिस चला था, और मोटर की भी एक ढिबरी ठीक करवाकर ही लौटूँ...उसकी चूड़ी घिस जाने से थोड़ा-थोड़ा तेल चूता रहता था, वैसे बहुत जरूरी काम नहीं था। खैर, इसमें कोई दो घंटे लग गए, खाना खाने में एक घंटा और तीन घंटे बाद वापस लौटने लगे तो देखा, सड़क पर पानी फैल गया है। पानी गहरा नहीं होगा, यह सोचकर मैं मोटर बढ़ाता चला गया। आगे देखा, सब ओर पानी ही पानी है, सड़क का कहीं पता नहीं लगता, सिर्फ पेड़ों की कतार से अंदाज लग सकता था। पर पानी बड़े जोर से एक तरफ से दूसरी तरफ बह रहा था, क्योंकि सड़क के एक तरफ नदी थी, दूसरी तरफ नीची सतह के धान के खेत, जिनकी ओर बढ़ रहा था। पानी के धक्के से सड़क कई जगह टूट गई थी। मैं फिर भी बढ़ता गया, क्योंकि आखिर पीछे भी पानी ही था। पर थोड़ी देर बाद पानी कुछ गहरा हो गया और उसके धक्के से

मोटर भी सड़क पर से हटकर किनारे की ओर जाने लगी। आगे कहीं कुछ दीखता नहीं था, क्योंकि सड़क की सतह शायद दो–तीन मील आगे तक बहुत नीची ही थी। सड़क के दोनों ओर जो पेड़ थे उनमें कइयों पर साँप लटक रहे थे, क्योंकि बाढ़ से बचने के लिए वे पहले सड़क पर आते थे और फिर पेड़ों पर चढ़ जाते थे।

मैंने लौटने का ही निश्चय किया। पर सड़क दीखती तो थी नहीं, अंदाज से ही मैं बीच के पक्के हिस्से पर गाड़ी चला रहा था। मोड़ने के लिए उसे पटरी से उतारना पड़ेगा...और इधर–उधर सड़क है भी कि नहीं, इसका क्या भरोसा ? मैं और एक जगह देख भी चुका था कि आँखों के सामने ही कैसे समूचा ट्रक दलदल में धँसकर गायब हो जाता है। इसलिए मोटर को बिना घुमाए उल्टे गियर में ही कोई ढाई मील तक लाया, यहाँ सड़क कुछ ऊँची थी, उसपर गाड़ी घुमाकर शिवसागर पहुँचा। शिवसागर से सोनारी को एक दूसरी सड़क भी जाती थी चाय–बागानों में से होकर, यह सड़क अच्छी थी, पर इसके बीच में एक नदी पड़ती थी जिसे नाव से पार करना होता था। मैंने सोचा कि इसी रास्ते चलें, क्योंकि सामान तो सब सोनारी में था, मैं डाक–बंगले से कुछ घंटों के लिए ही तो निकला था। शिवसागर में एक तो मोटर की ढिबरी कसवानी थी, और दूसरे दाँत–ब्रुश और कुछ तेल–साबुन लेना था, बस। वह भी लौटने की जल्दी के कारण नहीं लिया था।

इस सड़क से नदी तक पहुँच गए–वह बड़ी मुश्किल से, क्योंकि रास्ते में बड़ी फिसलन थी और गाड़ी बार–बार अटक जाती थी। नदी में नाव पर गाड़ी लाद भी ली, और पार भी चले गए। यहाँ भी नदी में बड़ी बाढ़ आई थी और बहते हुए टूटे छप्पर बता रहे थे कि नदी किसी गाँव को लीलती हुई आई है, एक भैंस भी बहती हुई आई और पेड़–पौधों की तो गिनती क्या। उस पार नदी का कगारा ऊँचा था, मोटर के लिए उतारा बना हुआ था, लेकिन नाव से किनारे जो तख्ते डाले गए थे, वे ठीक नहीं लग रहे थे। मोटर जब तख्तों पर आई और नाव एक तरफ को झुकी तो तख्ते फिसल गए, नाव दूर हट गई, मोटर नीचे गिरी, आधी पानी में, आधी किनारे पर। मैं जोर से ब्रेक दबाए बैठा था, पर ऐसे अधिक देर तक तो नहीं चल सकता था। लेकिन मैं तो मोटर के साथ खुद बँधा बैठा था, उतरकर समझा नहीं सकता था। खैर आध घंटा उस स्वर्ग नसैनी पर बैठे–बैठे असमिया, हिन्दी और बंगला की खिचड़ी में लोगों को बताता रहा कि क्या करें, तब मोटर ऊपर चढ़ाई जा सकी। थोड़ा आगे ही ऊँची जगह गाँव था। वहाँ मोटर रोककर चाय की तलाश की। यहीं सोनारी से आए दो साइकिल–सवारों से मालूम हुआ कि वे कंधे तक पानी में से निकलकर आए हैं साइकिलें कधों पर उठाकर! और मोटर तो कदापि नहीं जा सकती।

इस तरह इधर भी निराशा थी। पानी अभी बढ़ रहा था। यह गाँव ऊँची जगह था, पर यहाँ कैद हो जाना मैं नहीं चाहता था, इसलिए फिर नाव पर मोटर चढ़ाकर उसी रास्ते नदी पार की। सबने मना किया पर मेरे सिर पर भूत सवार था, और हठधर्मी का अपना अनूठा रस होता है!

रात शिवसागर पहुँचे। एक सज्जन ने ठहरने को जगह दी, भोजन–बिस्तर का प्रबंध भी हो गया, पर दाँत का ब्रुश तो उधार नहीं लिया जा सकता। सबेरे–सबेरे चलकर एक सौ अट्ठाइस किलोमीटर दूर डिब्रूगढ़ पहुँचे, वहाँ ब्रुश लेकर मुँह–हाथ धोकर सुस्थ हुए, यहाँ एक कमीज और पैण्ट खरीदकर कपड़े बदले, रात के

लिए एक कंबल खरीदा। मन–ही–मन अपने को कोसा कि न नया दाँत–ब्रुश लेने के लिए सोनारी से निकले होते, न यह मुसीबत होती, क्योंकि इसकी ऐसी तात्कालिक आवश्यकता तो थी नहीं, न मोटर की ढिबरी का मामला ही इतना जरूर था। लेकिन उपाय क्या था?

इस तरह बारह दिन और काटने पड़े, क्योंकि सोनारी के सब रास्ते बंद थे लौटकर देखा, सोनारी के डाकबंगले में पानी भर गया था, कपड़े सब सीलकर सड़ रहे हैं, किताबें तो गल ही गई थीं। बचा था तो केवल स्नानघर में ऊँचे ताक पर रखा हुआ साबुन का डिब्बा, और दाँतों का ब्रुश।

नक्शे मैं अब भी देखता हूँ। वास्तव में जितनी यात्राएँ स्थूल पैरों से करता हूँ, उससे ज्यादा कल्पना के चरणों से करता हूँ। लोग कहते हैं कि मैंने अपने जीवन का कुछ नहीं बनाया, मगर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और किसी से ईर्ष्या नहीं करता। आप भी अगर इतने ही खुश हों तो ठीक–तो शायद आप पहले से मेरा नुस्खा जानते है–नहीं तो मेरी आपको सलाह है, ''जनाब, अपना बोरिया–बिस्तर समेटिए और जरा चलते–फिरते नजर आइए।'' यह आपका अपमान नहीं हैं, एक जीवन–दर्शन का निचोड़ है। 'रमता राम' इसलिए कहते हैं कि जो रमता नहीं, वह राम नहीं, टिकना तो मौत है।

एकांकी

अधिकार का रक्षक

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

लेखक परिचय :

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का जन्म पंजाब राज्य के जालंधर में एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में 14 दिसम्बर सन् 1910 ई० को हुआ था। इनके पिता पंडिक माधोराम स्टेशन मास्टर थे। अश्क जी ने स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद एल.एल.बी. किया। इन्होंने कुछ समय तक वकालत किया और फिर वकालत छोड़कर लेखन के क्षेत्र में आ गए। अश्क जी पहले उर्दू में लिखते थे। 'नवरत्न' और 'औरत की फितरत' इनके उर्दू में लिखे कहानी संग्रह हैं। 'औरत की फितरत' की भूमिका मुंशी प्रेमचंद जी ने लिखी थी। मुंशी प्रेमचंद की प्रेरणा और प्रोत्साहन से हिन्दी में लिखने लगे। अश्क जी ने लाला लाजपत राय के पत्र 'वन्दे मातरम' के लिए संवाददाता के रूप में कार्य किया। इन्होंने दैनिक 'वीर भारत' का सम्पादन किया साप्ताहिक पत्र 'भूचाल' का प्रकाशन एवं सम्पादन किया। इन्होंने इसके बाद ऑल इंडिया रेडियो में नाटक लेखक एवं हिन्दी सलाहकार के रूप में भी कार्य किया। अश्क जी ने बम्बई में फिल्मिस्तान समूह के लिए अनेक फिल्मों की पटकथा एवं संवाद भी लिखे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— सितारों के खेल, गिरती दीवारें, गर्मराख, बड़ी-बड़ी आँखें, शहर में घूमता आइना इनके प्रमुख उपन्यास हैं। जुदाई की शाम का गीत, काले साहब आदि इनके कथा-संग्रह हैं। जय पराजय, स्वर्ग की झलक, लक्ष्मी का स्वागत, कैद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते, अंजोदीदी आदि इनके प्रमुख नाटक हैं। दीप जलेगा, चांदनी रात और अजगर इनके कविता संग्रह हैं। मंटो मेरा दुश्मन, चेहरे अनेक इनके द्वारा लिखित संस्मरण हैं।*

हिन्दी नाटक को एक नई दिशा देने में अश्क जी का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांस के कठघरे से निकाल कर आधुनिक भाव-बोध से जोड़ने में सफलता पाई। हिन्दी नाटक और रंगमंच को आधुनिक यथार्थ से जोड़ा। अश्क जी को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया जिनमें 'संगीत नाटक अकादमी पुस्कार' और 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्रमुख हैं।

इनकी मृत्यु 19 जनवरी सन् 1996 ई० को इलाहाबाद में हुई।

पात्र

सेठ घनश्यामदास — रामलखन
सेठानी — भगवती
नन्हा बलराम — संपादक
कॉलेज के दो लड़के इत्यादि

समय : आठ बजे सुबह

स्थान : सेठ घनश्यामदास के मकान का ड्राइंग-रूम

सामने दीवार में बायीं ओर को एक बड़ी मेज और इधर को एक गद्देदार कुर्सी लगी है। दायीं ओर एक तख्त बिछा है। मेज और तख्त के बीच एक ऊँचे स्टूल पर टेलीफोन इस तरह रखा हुआ है कि कुर्सी और तख्त दोनों से उसे सुगमता के साथ उठाया जा सके।

मेज पर दीवार के साथ एक छोटा-सा तिकोना बुक-रैक है, जिसमें पुस्तकें करीने से रखी हैं। दायें-बायें लोहे की दो ट्रे पड़ी हैं, जिनमें से एक में कागज-पत्र और दूसरी में अखबार पड़े हैं। बीचों-बीच शीशे का एक चौकोर टुकड़ा है, जिसके नीचे जरूरी कागज दबे हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य एक सुंदर कलमदान रखा है और दो-एक कलम शीशे पर बिखरे हैं।

तख्त के पास एक आराम-कुर्सी पड़ी है।

बायीं दीवार के साथ काउच का एक सेट लगा है। इस दीवार में दो खिड़कियाँ भी हैं, जिनके बीच दीवार में एक कैलेंडर लटक रहा है। दायीं दीवार में एक दरवाजा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर सेठजी कुर्सी पर बैठ कोई समाचार-पत्र देखते नजर आते हैं।

टेलीफोन की घंटी बजती है। सेठजी समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं।

सेठजी : हेलो...(जरा और ऊँचे) हेलो! ...हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप...अच्छा अच्छा, रलारामजी, मंत्री हरिजन-सभा हैं! नमस्ते, नमस्ते। **(जरा हँसते हैं)** सुनाइये महाराज, कल के जलसे की कैसी रही ?...अच्छा ? आपके भाषण के बाद हवा पलट गयी! सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये। शुक्रिया, शुक्रिया! हिं हिं...हिं हिं...ठीक ठीक! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने! हिं हिं...हिं...असल में अपना सारा जीवन मैंने पीड़ितों, पददलितों और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिये! हमारे घरों में उनकी दशा कैसी भयानक है। उनके लालन-पालन और पठन-पाठन का ढंग कितना पुराना,

ऊल-जलूल और दकियानूसी है! उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित-दबाव में रखकर उन्हें कितना डरपोक और भीरु बना दिया जाता है! उनका स्वाभाविक विकास...

छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।

बलराम : बाबूजी, बाबूजी, हमें मेले...

सेठजी : (पूर्ववत टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज तनिक ऊँची हो जाती है) हाँ, हाँ, मैं यही कह रहा था कि बच्चों का स्वाभाविक विकास हमारे यहाँ नहीं हो पाता। लेकिन शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य...

बलराम : (और समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़कर) बाबूजी...

सेठजी : (चोंग से मुँह हटाकर, क्रोध से) ठहर कम्बख्त! देखता नहीं, मैं टेलीफोन पर...

बच्चा रोने लगता है।

सेठजी : (टेलीफोन पर) मैं आपसे अभी एक सेकेंड में बात करता हूँ, इधर जरा शोर हो रहा है। (चोंगा खट से मेज पर रख देते हैं। बच्चे से) चल, निकल यहाँ से। सूअर! कम्बख्त!!

कान पकड़कर उसे दरवाजे की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है।

: (नौकर को आवाज देते हैं) ओ रामलखन, ओ रामलखन!

रामलखन : (बाहर से) आय रहे हैं बाबूजी!

भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है।

: जी बाबूजी।

सेठजी : (नौकर को पीटते हुए) सूअर! पाजी! हरामखोर! क्यों इसे इधर आने दिया? क्यों इधर आने दिया इसे?

रामलखन : अब बाबू काहे मारत हो? लिए तो जाय रहे हैं!

लड़के का बाजू थामकर उसे बाहर ले जाता है।

सेठजी : और सुनो, किसी को इधर मत आने दो! कोई बाहर से आये तो पहले आकर खबर दो! समझे!! नहीं तो मार-मारकर खाल उधेड़ दूँगा। (नौकर और लड़के को बाहर निकालकर जोर से किवाड़ लगा देते हैं।) हुँह! अहमक! मुफ्त में इतना समय बर्बाद कर दिया। (चोंगा उठाते हैं।) (किंचित कर्कश स्वर में) हेलो!... (स्वर में तनिक विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा आप अभी हैं। (स्वर को कुछ और संयत करके) तो मैं कह रहा था कि प्रांत में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ, जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन किया, जो घरों और स्कूलों में

छोटे-छोटे बच्चों पर ढाया जाता है और फिर वह मैं ही हूँ, जिसने पाठशालाओं में शारीरिक दंड को तत्काल बंद कर देने पर जोर दिया। दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग, घरों में काम करने वाले भोले-भाले निरीह-नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के जुल्म का शिकार बनते हैं। इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने के लिए मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अलावा अग्रवाल होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उनके स्वत्वों की, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं विधान-सभा में गया तो...

(दरवाजा खुलता है।)

रामलखन : (दरवाजे से झाँककर) बाबूजी जमादारिन...

सेठजी : (टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ पर भी हरिजनों की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन : (जरा अंदर आकर) बाबू जी...

सेठजी : (क्रोध से) ठहर पाजी! (टेलीफोन में) नहीं नहीं, मैं नौकर से कह रहा था (खिसियाने-से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक में प्रोपेगेंडा करें।... हैं... क्या?...अच्छा अच्छा... मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा। क्या करूँ अवकाश नहीं मिलता...हिं हिं...हिं...हिं... (हँसते हैं) अच्छा नमस्कार! (टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं। नौकर से) तुझे तो कहा था, इधर मत आना!

रामलखन : आपै तो कहे रहेन कि केऊ आये तो इत्तला कर देई, मुदा अब ई जमादारिन आपन मजूरी माँगत...

सेठजी : (गुस्से से) कह दे उससे, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। जा और किसी को मत आने दे!

भंगिन : (दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज, जुग-जुग जिओ तरक्की करो। दो महीने हो गये हैं।

सेठजी : कह जो दिया, फिर आना। जाओ! अब समय नहीं।

भगवती प्रवेश करता है।

भगवती : जयरामजी की बाबूजी!

सेठजी : तुम इस समय क्यों आये हो भगवती?

भगवती : बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो।

सेठजी : (बेपरवाही से) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती : बाबूजी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए।

सेठजी : (जरा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ! यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब-हिसाब चिल्ला रहे हो!

भगवती : जब आपकी नौकरी करते हैं तो खाने के लिए और कहाँ माँगने जायँ?

सेठजी : अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

भगवती : वो कहाँ रहे? एक तो रास्ते ही में बनिये की भेंट हो गया, दूसरे से किसी तरह आज तक का काम चला है।

सेठजी : (जेब से रुपया निकाल कर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती : नहीं बाबूजी, एक-एक नहीं। आप मेरा हिसाब चुकता कर दीजिये। तनखाह मिले तीन-तीन महीने हो गये हैं। एक-एक, दो-दो से कितने दिन काम चलेगा? हमारे भी आखिर बीबी-बच्चे हैं; उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक-एक के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने...

सेठजी : (क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो! कह जो दिया, अभी यह ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती : हम तो आज ही सब लेकर जाएँगे।

सेठजी : (उठकर, और भी क्रोध से)—क्या कहा! आज ही लेगा! अभी लेगा! जा। नहीं देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर, आज तक, सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलुफ में, यहाँ तक कि बाजार से आने वाली हर चीज में पैसे रखता रहा, हमने कभी न कहा। अब यों अकड़ता है। जा निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। चोरी के जुर्म में छह महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो घनश्यामदास नाम नहीं।

भगवती : सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार हो तो चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखों में धूल झोंककर लाखों पर हाथ साफ कर जाय, चंदे के नाम पर हजारों...!

सेठजी : (क्रोध से पागल होकर) तू जायेगा या नहीं! (नौकर को आवाज देते हैं) रामलखन, रामलखन!

रामलखन : जी बाबूजी, बाबूजी! (भागता हुआ भीतर आता है)

सेठजी : इसको बाहर निकाल दो!

रामलखन : (भगवती के बलिष्ठ, चौड़े-चकले शरीर को नख-से शिख तक देखकर) एका बाहर निकारि दें, ई हम सों कब निकरि सकत हैं। ई तो हमैं निकारि दे...

सेठजी : (बाजू से रामलखन को परे हटाकर) हट, तुझसे क्या होगा! (भगवती को पकड़कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं।) निकलो, निकलो!

भगवती : मार लें, और मार लें! हमारे चार पैसे रखकर आप लखपती न हो जाएँगे।

सेठजी उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाजा बंद कर देते हैं।

सेठजी : (रामलखन से) तुम यहाँ क्या देख रहे हो? जाओ!

रामलखन डरकर चला जाता है। सेठजी तख्त पर लेट जाते हैं।

: बेवकूफ, नामाकूल! (फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं,फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज देते हैं।) रामलखन, रामलखन!

रामलखन : (बाहर से) आय रहे बाबूजी! (प्रवेश करता है।)

सेठजी : अखबार अभी आया है कि नहीं?

रामलखन : आय गया बाबूजी, बड़े काका पढ़ि रहे हन, अभी लाये देइत है।

सेठजी : पहले इधर क्यों नहीं लाया? कितनी बार तुझे कहा है, अखबार पहले इधर लाया कर। ला भागकर।

रामलखन भागता हुआ जाता है।

सेठजी : (घूमते हुए अपने-आप) मेरा वक्तव्य कितना जोरदार था, छात्रों में हलचल मच गयी होगी, सबकी हमदर्दी मेरे साथ हो जायेगी। ...छात्रों को वोट का अधिकार चाहे न हो, लेकिन वोटरों पर असर तो डाल सकते हैं, आंदोलन करके मेरे हक में फिजा तो तैयार कर सकते हैं।

टेलीफोन की घंटी बजती है। सेठजी जल्दी से चोंगा उठाते हैं।

सेठजी : (टेलीफोन पर, धीरे से) हेलो! (जरा ऊँचे) हेलो!... कौन साहब? ...मंत्री होजरी-यूनियन? अच्छा अच्छा, नमस्कार, नमस्कार। हिं हिं...हिं हिं...सुनाईये, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है? ...क्या? ...सब मेरे पक्ष में वोट देने को तैयार हैं! मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ... इस ओर से आप बिलकुल निश्चित रहें। मैं उन लोगों में से नहीं, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वहीं करता हूँ और जो करता हूँ, वही कहता हूँ। आपने मेरी चुनाव-सम्बंधी घोषणा नहीं पढ़ी? मैं असेम्बली में जाते ही मजदूरों की स्थिति सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के संबंध में 'विशेष बिल' विधान सभा में पेश करूँगा!...क्या? हाँ...हाँ, इस तरफ से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूँ, इस सिलसिले में मजदूरों को किस मुसीबत का

सामना करना पड़ता है। ये पूँजीपति गरीब श्रमिकों के कई-कई महीनों के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर मजबूर कर देते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, शानदार होटलों में खाना खाते हैं, और जब ये गरीब दिन-रात खून-पसीना एक कर देने के बाद, अपनी मजदूरी मांगते हैं तब हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का या कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बनाकर उन्हें टरका देते हैं। मैं असेम्बली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा, जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने गरीब मजदूरों के वेतन तीन महीने से ज्यादा दबा रखे हों, उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दंड दिया जाय। ...हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहो-आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। हफ्ते में ४२ घंटे काम की माँग कोई अनुचित माँग नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। तेरह-तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है!

धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है और संपादक महोदय भीतर आते हैं—पतले-दुबले-से, आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा लगता है जैसे देर से अतिसार का रोग है। धीरे से दरवाजा बंद करके खड़े रहते हैं।

सेठजी : **(संपादक से)** आप बैठिये। **(टेलीफोन पर)** ये हमारे संपादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर शाम को आपकी सभा हो रही है। मैं आने का प्रयास करूँगा। और कोई बात हो तो कहिये। नमस्कार! **(चोंगा रख देते हैं।)** **(संपादक से)** बैठ जाइये। आप क्यों खड़े हैं?

संपादक : नहीं, नहीं, कोई बात नहीं।

तकल्लुफ के साथ काउच पर बैठते हैं। रामलखन समाचार-पत्र लिए आता है।

रामलखन : बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरजस्ती लेइ आये।

सेठजी : **(समाचार-पत्र लेकर)** जा, जा, बाहर बैठ! **(कुर्सी को तख्त-पोश के पास सरकाकर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।)**

संपादक : मैं...मैं...

सेठजी : **(पत्र बंद करके)** हाँ, हाँ, पहले आप ही फरमाइये!

संपादक : **(होठों पर जबान फेरते हुए)** बात यह है कि मेरी...मेरा मतलब है...कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं।

सेठजी : आपको डॉक्टर से राय लेनी चाहिए थी। कहिये डॉक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ?

संपादक : नहीं, यह बात नहीं। **(थूक निगल कर)** बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं बरदाश्त कर सकतीं। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छह-सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ। वापसी पर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

सेठजी : तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस, जल्दी काम निबटा दिया...

संपादक : मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्द खत्म हो जाये, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज...

सेठजी : हाँ, हाँ, समाचार तो नहीं रहना चाहिए।

संपादक : फिर यही नहीं, आपके भाषाओं की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-करते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइये पहले कैसे जा सकते हैं!

सेठजी : (बेजारी से) तो आखिर आप चाहते क्या हैं?

संपादक : मैंने पहले भी निवेदन किया था कि एक और आदमी का प्रबंध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ आया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। इससे...

सेठजी : मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ, यह असंभव है, बिलकुल असंभव है। पत्र कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और संपादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

संपादक : मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे काम कर सकती हैं?

सेठजी : कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी। छह महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। यों काम छोड़ना चाहें तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायेंगे, लेकिन...

रामलखन भीतर आता है।

रामलखन : बाहर दुई लरिका आप से मिलै चाहत हैं।

सेठजी : कौन हैं?

रामलखन : कौनो सकटड़ी कहन रहेन...

सेठजी : जाओ बुला लाओ। (संपादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कॉलेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

संपादक : (मुँह फुलाये हुए) जरूर पड़ा होगा।

सेठजी : मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रखी है, दूसरे के गले में खुले कालर की कमीज है।

दोनों : नमस्ते।

सेठजी : नमस्ते!

दोनों काउच पर बैठते हैं।

सेठजी : कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

खुले कालर वाला : हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

सेठजी : आपने उसे कैसा पसंद किया?

वही लड़का : छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

सेठजी : आपके मित्र किसको बैक कर रहे हैं?

वही लड़का : कल तक तो कुछ न पूछिये; लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आज ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी ओर था।

सेठजी : (प्रसन्नता से) और मैंने गलत ही क्या लिखा है? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका हो, वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे। युवकों को तो उस नेता की जरूरत है, जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफार्म से खौफ न खाये, सुधारों से कन्नी न काटे।

वही लड़का : हम अपने कॉलेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। लेकिन कॉलेज के सर्वे-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

सेठजी : आपको प्रोटेस्ट करना चाहिए था।

वही लड़का : हमने हड़ताल कर दी है।

सेठजी : आपने क्या माँगें पेश की हैं?

वही लड़का : हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबंध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके संबंधियों से निहायत अपमानजनक है।

सेठजी : (कुछ उत्साहहीन होकर) तो आप क्या चाहते हैं?

दोनों : हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

सेठजी : (गिरी हुई आवाज में) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक ढंग अपनाते, प्रबंधकों से मिल-जुलकर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का : हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

सेठजी : हूँ!

टा०वा०ल० : बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असंतुष्ट हैं। व्यवस्थापकों ने कभी परवाह नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कॉलेज की प्रबंध-समिति के पास भेजे गये, पर समिति के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। हारकर हमने हड़ताल कर दी है। मुश्किल यह है कि समिति काफी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसीलिए हम आपकी सेवा में आये हैं।

सेठजी : (अनमयस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे संपादक हैं, आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों : (उठते हुए) जी बहुत अच्छा, कल हम संपादकजी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार! सेठजी और

संपादक : नमस्कार!

दोनों का प्रस्थान।

सेठजी : (संपादक से) ये कल आयें तो इनका वक्तव्य हरिगज न छापियेगा। प्रिंसिपल हमारे मेहरबान हैं और समिति के सदस्य हमारे मित्र!

संपादक : (मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

सेठजी : आप घबरायें नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो कौन-सी आफत आ गयी? जब मैंने पत्र आरंभ किया था, मैं चौदह-चौदह, पंद्रह-पंद्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी-न-किसी तरह निकालिये, चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबंध कर दूँगा।

संपादक : (दीर्घ निश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा (मुँह फुलाकर) नमस्कार!

सेठजी केवल सिर हिलाते हैं। संपादक महोदय चले जाते हैं। सेठजी फिर समाचार-पत्र पढ़ना आरंभ करते हैं। दरवाजा जोर से खुलता है और बलराम का बाजू थामे सेठानी बगुले की तरह प्रवेश करती हैं।

सेठानी : मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे? जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नजर आते हो, जैसे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया, जो पीटने लगे? देखो तो सही, अभी तक कान कितना लाल है!

सेठजी : (पूर्ववत समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने की तमीज भी आयेगी? जाओ, इस वक्त मेरे पास समय नहीं है!

सेठानी : आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी समय होता भी है? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से वक्त निकल आता है! इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था,

बीसों आवाजें दीं, घर का कोना-कोना छान मारा। जाकर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गयी थी?

सेठजी : (क्रोध से पत्र को तख्त पर पटककर) क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभालकर रखा करो, आ जाते हैं सुबह दिमाग चाटने!

सेठानी बच्चे को दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।

सेठानी : (बच्चे को पीटते हुए) तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर! ये बाप नहीं दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लायेंगे! (बच्चे को एक और चपत लगाती हैं।) तुझसे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में! मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती! (आवाज ऊँची होते-होते रोने की हद को पहुँच जाती है) खुद जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ— मार खाने, कान तुड़वाने?

सेठजी : (क्रोध से पागल होकर, पत्नी को धकेलते हुए) मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो! यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया? अभी कोई आ जाये तो क्या हो? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अंदर जाकर बैठा करो।

सेठानी : (तुनककर खड़ी हो जाती हैं) आप कभी घर के अंदर आयें भी! आपके लिए तो जैसे घर के अंदर आना पाप है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें?

सेठजी : कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गयी? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आसमान सिर पर उठा लिया।

सेठानी : सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिये! कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ!

पागलों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख्त पर मारती है। सेठजी उन्हें तड़ातड़ पीटते हैं।

सेठजी : मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गयी हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी रोज की बक-झक से तंग आकर मैं इधर एकांत में आ गया हूँ! अब यहाँ भी आकर तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है। क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

सेठानी : (रोते हुए) आप क्यों चले जायँ? हम ही चली जायेंगी! (भर्राई हुई आवाज में नौकर को आवाज देती हैं) रामलखन, रामलखन!

रामलखन : जी बीबीजी? (प्रवेश करता है)

सेठानी : जाओ जाकर ताँगा ले आओ। मैं पीहर जाऊँगी।

तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती हैं। दरवाजा जोर से बंद होता है।

सेठजी : बेवकूफ, गँवार!

आरामकुर्सी पर बैठकर टाँगें तख्त-पोश पर रख लेते हैं और पीछे को लेटकर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घंटी बजती हैं।

सेठजी : (वहीं चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हेलो! हेलो!... नहीं, यह ३८१२ है, गलत नम्बर है। (बेजारी से चोंगा रख देते है।) ईडियट्स।

टेलीफोन की घंटी फिर बजती है।

: (और भी कर्कश स्वर में) हेलो! हेलो!... कौन? श्रीमती सरला देवी! (उठकर बैठते हैं। चेहरे पर मृदुलता और स्वर में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजियेगा, मैं जरा परेशान हूँ। सुनाइये, तबीयत तो ठीक है?...(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइये, आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है? मैं भी कुछ आशा रखूँ या नहीं... मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ, अत्यंत आभारी हूँ। आप विश्वास रखें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे अच्छा रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नजर न आयेगा...

पर्दा गिरता है।

काव्य

तुलसीदास के पद

तुलसीदास

कवि परिचय :

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत 1589 वि. (सन् 1532 ई०) में बाँदा जिले के राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। यह सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्मा राम दूबे और माता का नाम हुलसी था। अभुक्त भूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण इन्हें इनके माता-पिता ने त्याग किया। उनके बचपन का नाम रामबोला था। इनका पालन-पोषण मुनिया नामक दासी ने किया। तुलसीदास का प्रारंभिक जीवन अत्यंत कष्ट में बीता। मुनिया दासी की मृत्यु के बाद तुलसीदास दर-दर भटकते रहे। इनकी मुलाकात स्वामी नरहरिदास से हुई। जिन्होंने इन्हें राम कथा का अध्ययन कराया। तुलसीदास काशी में आकर धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने लगे। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की सुपुत्री रत्नावली से हुआ था। तुलसीदास जी रत्नावली से अतिशय प्रेम करते थे। एक दिन रत्नावली इन्हें बिना बताए पीहर चली गयी। तुलसीदास रात्रि में ही नदी-नाले पार करके रत्नावली के पास जा पहुँचे। तुलसीदास को इस तरह से आने के लिए रत्नावली ने धिक्कारा और कहा —

अस्थि चर्ममय देहमम, ता में ऐसी प्रीति।
ऐसी हो श्रीराम में, होत न तो भवभीति।।

रत्नावली की बातों से तुलसीदास अत्यन्त मर्माहत हुए और वापस लौट आए। वह काशी जाकर सन्यासी हो गए, और जीवन पर्यंत रामकथा और सत्संग में ही लगे रहे। तुलसीदास ने राम को अपना आराध्य मान लिया और राम भक्ति में ही लीन हो गए। तुलसीदास संस्कृत के महापंडित थे।

तुलसीदास का काव्य ईश्वर-भक्ति, समाज सुधार और मानवता के उच्चतम आदर्श से अनुप्राणित है। तुलसीदास के काव्य का मुख्य लक्ष्य लोक मंगल है। तुलसीदास की ईश्वर-भक्ति विनय, श्रद्धा एवं करूणा भावना से परिपूर्ण है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं — 'रामचरित मानस', 'विनय-पत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली', वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण' इत्यादि।

तुलसीदास की मृत्यु सं० 1680 वि. (सन् 1623 ई०) में मानी जाती है।

क) अबलौं नसानी, अब न नसैहौं!
राम–कृपा भव–निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं!!
पायेउँ नाम चारू चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं!
स्यामरूप सुचि रूचिर कसौटी, जित कंचनहिं कसैहौं!!
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं!
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति–पद–कमल बसैहौं!!

ख) मन मेरे, मानहि सिख मेरी! जो निजु भगति चहै हरि केरी!
उर आनहि प्रभु–कृत हित जेते। सेवहि ते जे अपनपौ चेते!!
दु:ख–सुख अरु अपमान बड़ाई! सब मन लेखहि बिपत्ति बिहाई!
सुनु सठ काल–ग्रसित यह देही! जनि तेहि लागि बिदूषहि केही!
तुलसीदास बिनु असि मति आये! मिलहिं न राम कपट–लौ लाये!!

रहीम के दोहे

रहीम

कवि परिचय :

रहीमदास जी भक्ति काल के कवि थे। इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। इनका जन्म 17 दिसम्बर सन् 1556 ई० को लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरम खान खानखाना था। अल्प आयु में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। मुगल सम्राट अकबर ने इनके पालन पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा का दायित्व उठाया। बाद में यह अकबर के दरबारी कवि हुए एवं उनके नवरत्नों में शामिल हुए। रहीम दास जी कृष्ण भक्त कवि थे। अरबी, फारसी, और संस्कृत का इन्हें अच्छा ज्ञान था। रहीम दास अत्यंत दयालु, विनम्र एवं उदार प्रकृति के इंसान थे। ये अत्यंत रहम दिल इंसान थे और गरीबों को दान देने के लिए प्रसिद्ध थे। रहीम दास ने अनेक दोहों की रचना की। इनके द्वारा रचित दोहावली, नगर शोभा, बरबै नायिका भेद और मदनाष्टक प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके नीति संबंधी दोहे अत्यंत लोकप्रिय हैं। इन दोहों में जीवन की विविध अनुभूतियों एवं सच्चाईयों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

रहीम की मृत्यु सन् 1627 में आगरा में हुई।

१) जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह।।

२) धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय।।

३) रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।

४) रहिमन नीचन संग बसि, लागत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।।

५) प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय।।

६) मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीश।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस।।

७) यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय।।

८) रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चिटकाय।
टूटे से फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परि जाय।।

९) जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, शीत घाम और मेह।

१०) जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

वृन्द के दोहे

वृन्द

कवि परिचय :

वृन्द रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य परम्पंरा के प्रमुख कवि हैं। वृन्द का पूरा नाम वृन्दावन था। इनका जन्म सन् 1643 ई० में बीकानेर में हुआ था। वृन्द बचपन से ही सुशील, गंभीर और तीव्र बुद्धि वाले थे। वृन्द ने काशी में तारा पण्डित से साहित्य एवं दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। यह मुगल बादशाह औरंगजेब और उसके पुत्र अजीमुश्शाह के दरबारी कवि थे। बाद में किशनगढ़ के राजा राजसिंह के गुरू हुए। वृन्द ने ब्रज भाषा में रचनाएं रचीं। दोहा छंद में रचित इनकी नीति की बातें अत्यंत लोकप्रिय हैं। वृन्द सतसई, श्रृंगार शिक्षा, भाव पंचाशिका, बारहमासा, नयन पचीसी, पवन पचीसी, यमक सतसई आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इन्होंने 'हितोपदेश' नामक नाटक की भी रचना की है। इनकी रचनाएँ रीतिबद्ध काव्य परम्पंरा में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनका निधन सन् 1723 ई० में हुआ।

१) करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आबत जात तैं सिल पर परत निसान।।

२) उत्तम विद्या लीजिये जदपि नीच पै होय।
परयो अपाबन ठौर मैं कंचन तजत न कोय।।

३) सरसुति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचे घटि जात।।

४) कुल कपूत (सपूत) जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरबान के होत चीकने पात।।

५) कछु कहि नीच न छोड़िये भलो न बाको संग।
पाथर डारे कीच मैं उछरि बिगारै अंग ।।

६) अपनी पहुँच बिचारि कै करतब करियै दौर,
तेते पांव पसारिये जेती लाँबी सौर।।

७) नैंना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसे निरमल आरसी भली बुरी कहि देत।।

८) अति परिचै तैं होत है अरूचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देत जराय।।

९) भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहि।
जान परतु है काक पिक रितु बसंत के माहि।।

१०) सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय।।

चारु चन्द्र की चंचल किरणें

मैथिलीशरण गुप्त

कवि परिचय :

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म 3 अगस्त सन् 1886 ई० को चिरगांव (झांसी) में हुआ था। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण गुप्त और माता का नाम काशी बाई था। गुप्त जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, और बंगला का अध्ययन किया। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएं कलकता से प्रकाशित 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से परिचय के बाद इनकी कविताएं 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन एवं स्नेह से इनकी काव्य कला में निखार आया। गुप्त जी का खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण एवं विकास में अभूतपूर्व योग्यदान है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान और युगधर्म के प्रति जागरूक रचनाकार थे। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। रामायण, महाभारत एवं बौद्ध कथाओं से इनकी रचनाएँ प्रेरित हैं।

गुप्त जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— रंग में भंग, जयद्रथ वध, भारत-भारती, पंचवटी, झंकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, विष्णुप्रिया आदि उनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ हैं। तिलोत्तमा, चन्द्रहास, अनघ इनके द्वारा रचित नाटक हैं। प्लासी का युद्ध, मेघनाद वध, वृत्रसंहार इनके द्वारा अनूदित काव्य ग्रंथ हैं।*

'साकेत' महाकाव्य पर गुप्त जी को 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया। गुप्त जी राज्य सभा के मानद सदस्य भी रहे। इन्हें भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' पुरस्कार से भी सम्मानित किया। गुप्त जी की मृत्यु 12 दिसम्बर सन् 1964 ई० में हुई।

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बरतल में।

पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानो झूम रहे हैं तरू भी
मन्द पवन के झोंकों से।।

[पंचवटी काव्य-संग्रह]

मुझे पुकार लो

हरिवंशराय 'बच्चन'

कवि परिचय :

हरिवंशराय 'बच्चन' जी का जन्म इलाहाबाद के एक श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में सन् 27 नवम्बर 1907 ई० में हुआ। उन्होंने कायस्थ पाठशाला से हाईस्कूल, प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। इसके बाद इन्होंने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में वह अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। केन्द्रीय सरकार के विदेश मंत्रालय में भी उन्होंने कुछ वर्षों तक कार्य किया। उन्होंने लन्दन के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य के विख्यात कवि डब्लू. बी. यीट्स की कविताओं पर शोध कर पीएच. डी. पूरी की। हरिवंशराय 'बच्चन' उत्तर छायावादी युग के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में व्याप्त निराशा व वेदना से उभरकर मधुरता, आस्था और विश्वास के गीत गाये। 'बच्चन' जी गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे। 'बच्चन' जी की कविताओं में मानवीय भावनाओं की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति हुई है। खड़ी बोली में रचित उनकी अनेक कविताएं लोकधुनों पर आधारित हैं।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, सतरंगिनी, मिलन यामिनी निशा निमंत्रण, आकुल अंतर, खादी के फूल, हालाहल, एकांत संगीत, बुद्ध का नाचघर आदि उनके प्रमुख काव्य हैं। क्या भूलूँ क्या याद करूँ, बसेरे से दूर, नीड़ का निर्माण फिर फिर, दस द्वार से सोपान तक उनकी आत्मकथात्मक रचनाएँ हैं। सरल व माधुर्य गुण से युक्त हिन्दी खड़ीबोली, जिसमें प्रतीकों का सुंदरता से प्रयोग किया गया है तथा गीतात्मक शैली उनके काव्य का प्रधान अंग हैं।*

उनकी कृति 'दो चट्टानें' को 1968 में हिन्दी कविता का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया था। इसी वर्ष उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा एफ्रो एशियाई सम्मेलन के कमल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। बिड़ला फाउन्डेशन ने उनकी आत्मकथा के लिये उन्हें सरस्वती सम्मान दिया था। बच्चन जी को भारत सरकार द्वारा 1963 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। 'बच्चन' जी को 1966 ई० में राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया था। 'बच्चन' जी का निधन सन् 18 जनवरी 2003 ई० को मुंबई में हुआ।

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता
जहान देखकर मुझे
नहीं जबान खोलता,

नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनबी गिना गया,

कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता

कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

तिमिर-समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,

विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,

न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली,

न कट सकी, न घट सकी
विरह -घिरी विभावरी,

कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे दुलार लो!

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

उजाड़ से लगा चुका
उमीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद का,
बसंत के बयार की,

मरूस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,
अंगार से लगा चुका
उमीद मैं तुषार की

कहाँ मनुष्य है जिसे
न भूल शूल-सी गड़ी
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो!

इसीलिए खड़ा रहा कि
तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो,
दुलार कर सुधार लो!

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली (50 शब्द)

1. Advance — अग्रिम
2. Agent — अभिकर्त्ता
3. Agenda — कार्यसूची
4. Arrears — बकाया
5. Attestation — साक्ष्यांकन
6. Balance sheet — तुलनापत्र
7. Bond — बंध पत्र
8. Bureau — कार्यालय
9. Bonafides — सद्भाव
10. Cell — कक्ष
11. Code — संहिता
12. Confirmation — पुष्टि
13. Consent — सहमति
14. Diagram — आरेख
15. Dictation — श्रुतलेख
16. Entry — प्रविष्टि
17. Estate — संपदा
18. Ex-Officio — पदेन
19. Honorarium — मानदेय
20. Index — अनुक्रमणी
21. Memorandum — ज्ञापन
22. Mint — टकसाल
23. Personnel — कार्मिक
24. Postponement — मुल्तवी
25. Privilege — विशेषाधिकार
26. Record — अभिलेख
27. Stationery — लेखन-सामग्री
28. Extract — उद्धरण
29. Grant — अनुदान
30. Form — प्रपत्र
31. Imprest — अग्रदाय
32. Lease — पट्टा
33. Liaison — संपर्क
34. Ledger — खाता
35. Muster role — उपस्थिति नामावली
36. Ordinance — अध्यादेश
37. Perusal — अवलोकन
38. Quorum — गणपूर्ति
39. Preliminary — प्रारम्भिक
40. Routine — नेमी
41. Remuneration — पारिश्रमिक
42. Stamp — टिकट
43. Surcharge — अधिभार
44. Tenure — अवधि
45. Unauthorised — अनधिकृत
46. Vigilance — सतर्कता
47. Voluntary — स्वैच्छिक
48. Embassy — राजदूतावास
49. Defacto — वास्तव में
50. Ensuing — आगामी

हिन्दी 'ब'

पाठ्य - सामग्री (द्वादश)

पूर्णांक : 100 (90+10)]

गद्य / काव्य	40	अंक
पत्र/रिपोर्ताज/डायरी लेखन	10	अंक
व्याकरण	20	अंक
अनुवाद	15	अंक
पारिभाषिक शब्दावली	05	अंक
परियोजना (Project)	10	अंक
कुल	100	अंक

गद्य :

निबन्ध – साहित्य – महावीर प्रसाद द्विवेदी

कहानी – 1. भेड़ और भेड़िये – हरिशंकर परसाई

2. बूढ़ी काकी – मुंशी प्रेमचन्द

3. छुट्टी – रवीन्द्रनाथ टैगोर (अनूदित)

एकांकी – आजादी की नींद–भुवनेश्वर प्रसाद

काव्य :

भक्तिकालीन कवि

कबीर – 10 दोहे (गुरु–भक्ति, नीतिपरक)

1. राम नाम के पटंतरे.........
2. माया दीपक नर पतंग.........
3. भगति भजन हरि नांव.........
4. हेरत–हेरत हे सखी.........
5. हिन्दू मूये राँम कहि.........

6. काबा फिर कासी भया.........

7. कबिरा यहु घर प्रेम का.........

8. हरि हीरा जन जौहरी.........

9. हम घर जाला आपनां.........

10. प्रेम न बारी ऊपजै.........

सूरदास – भ्रमरगीत (चार पद)

1. मधुबन तुम कत रहत हरे ?
2. मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
3. देखियत कालिंदी अति कारी।
4. ऊधौ मन माने की बात

आधुनिक कालीन कवि

सोहन लाल द्विवेदी – सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी

शिवमंगल सिंह सुमन – आभार

केदारनाथ सिंह – पानी में घिरे हुए लोग

पत्र/रिपोर्ताज/डायरी लेखन

व्याकरण : सन्धि, विराम–चिन्ह का प्रयोग, वाच्य–परिवर्तन
निर्देशानुसार वाक्य परिवर्तन, लिंग, वचन, कारक

अनुवाद

पारिभाषिक शब्दावली (50 शब्द)

परियोजना (Project)

निबंध

साहित्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय :

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई० में रायबरेली जिला के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद इन्होंने रेलवे में नौकरी की। बाद में नौकरी से त्यागपत्र देकर हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के संपादक बने, और सन् 1920 तक उसके संपादन से जुड़े रहे। द्विवेदी जी एक व्यक्ति नहीं वरन् एक संस्था थे। वह हिन्दी के पहले व्यवस्थित सम्पादक, भाषा वैज्ञानिक, इतिहासकार, पुरातत्व वेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, चिंतक, समालोचक, लेखक और अनुवादक थे।

***उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं —** रसज्ञ रंजन, साहित्य सीकर, साहित्य संदर्भ, अद्‌भुत आलाप, संपत्ति शास्त्र, महिला मोद, आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। द्विवेदी काव्य माला में उनकी कविताएं संग्रहित हैं। उनका संपूर्ण साहित्य 'महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली' में 15 खण्डों में प्रकाशित है।*

द्विवेदी जी ने हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्करण किया और व्याकरण तथा वर्तनी के नियम स्थिर किए। ब्रज भाषा के स्थान पर उन्होंने खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने पत्रकारिता का श्रेष्ठ रूप सामने रखा। हिन्दी समालोचना को पहली बार उन्होंने स्थापित किया। भारतीय पुरातत्त्व एवं इतिहास पर खोजपरक कार्य किए। वह विद्वान एवं बहुज्ञ साहित्यकार थे। सरसता एवं व्यंग्यात्मकता उनके लेखन की प्रमुख विशेषता है।

इनकी मृत्यु सन् 1938 ई० में हुई।

ज्ञान–राशि के संचित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह, कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता, उसकी मान–मर्यादा उसके साहित्य ही पर अवलम्बित रहती है। जाति–विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके उच्च–नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का उसके ऐतिहासिक घटनाचक्रों और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रन्थ–साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आसक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है। जिस जाति–विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको दीख पड़े, आप निस्सन्देह निश्चित समझिए कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि

कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य–रूपी आईने ही में मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनी–शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बन्द कर दीजिए या कम कर दीजिए, आपका शरीर क्षीण हो जायेगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वंचित कर दीजिए, वह निष्क्रिय होकर धीरे–धीरे किसी काम का न रह जायेगा। बात यह है कि शरीर के जिस अंग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय तो उसकी वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव–सा नहीं कर डालना चाहते तो हमें साहित्य का सतत् सेवन करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उसका उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर, याद रखिए, विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण होकर बिगड़ जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क विकार–ग्रस्त होकर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान और शक्ति–सम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर अवलम्बित है। अतएव यह बात निश्चित है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एकमात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें श्रमपूर्वक, बड़े उत्साह से सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए। और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहना ही अच्छा समझते हों तो साहित्य–निर्माण के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिए।

आँख उठाकर जरा और देशों तथा और जातियों की ओर तो देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहां की सामाजिक तथा राजकीय स्थितियों में कैसे–कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ने वहां समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है; शासन–प्रबन्ध में बड़े–बड़े उथल–पुथल कर डाले हैं; यहां तक कि अनुदार और धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पायी जाती। यूरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पादन साहित्य ही ने किया है, जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के भावों को भी उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया है? फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किसने किया है? पदाक्रान्त इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है, जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करने वाली संजीवनी औषधि का आकार है, जो करने वाला है उसके उत्पादन और संवर्द्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती वह अज्ञानान्धकार के गर्त में पड़ी रहकर किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य अपने महत्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता, अथवा उससे अनुराग नहीं रखता वह समाजद्रोही है, वह जाति–द्रोही है, किंबहुना वह आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी है।

कभी–कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है। जैसे जर्मनी, रूस और इटली आदि देशों की भाषाओं पर फ्रेंच भाषा ने बहुत समय तक कर लिया था। स्वयं अंग्रेजी भाषा भी फ्रेंच और लैटिन भाषाओं के दबाव से नहीं बच सकी। कभी–कभी यह दशा राजनैतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है और विजित देशों की भाषाओं को विजेता जाति की

भाषा दबा लेती है। तब उनके साहित्य का उत्पादन यदि बन्द नहीं हो जाता तो उसकी वृद्धि की गति मन्द जरूर पड़ जाती है। यह अस्वाभाविक दबाव सदा नहीं बना रहता। इस प्रकार की दबी या अध: पतित भाषाएं बोलने वाले जब होश में आते है तब वे इस अनैसर्गिक आच्छादन को दूर फेंक देते हैं। जर्मनी, रूस, इटली और स्वयं इंग्लैंड चिरकाल तक फ्रेंच और लैटिन भाषाओं के मायाजाल में फंसे थे। पर बहुत समय हुआ, उस जाल को उन्होंने तोड़ डाला। अब वे अपनी ही भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करते हैं, कभी भूलकर भी विदेशी भाषाओं में ग्रन्थ रचना करने का विचार नहीं करते। बात है कि अपनी भाषा का साहित्य ही जाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्वपूर्ण ग्रंथ रचना करने पर भी विशेष लाभ नहीं पहुंच सकता। अपनी मां को नि:सहाय, निरुपाय, और निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरे की मां की सेवा सुश्रूषा में लगा होता है उस अधर्म की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या अपस्तम्ब ही कर सकता है।

मेरा मतलब यह कदापि नहीं कि विदेशी भाषाएं सीखनी ही न चाहिए। नहीं, आवश्यकता, अनुकूलता, अवसर और अवकाश होने पर हमें एक नहीं, अनेक भाषाएं सीखकर ज्ञानार्जन करना चाहिए। द्वेष किसी भाषा से न करना चाहिए। ज्ञान कहीं भी मिलता हो उसे ग्रहण ही कर लेना चाहिए। परन्तु अपनी ही भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोक-भाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना सभी दृष्टियों से हमारा परम धर्म है।

कहानी

भेड़ और भेड़िये

हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में हास्य व्यंग्य विधा को नया रूप और नया आयाम देने वाले हरिशंकर परसाई जी का जन्म 22 अगस्त 1924 ई० को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गांव में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा सुचारू रूप से नहीं हो सकी। इनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षपूर्ण रहा। पिता की बीमारी के कारण परिवार की आजीविका के लिए इन्हें नौकरी करनी पड़ी। नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने अनेक स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। बाद में नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन को अपना लिया। जबलपुर में रहते हुए 'वसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन शुरु किया। आर्थिक हानि उठाने के कारण उन्हें वसुधा का प्रकाशन बंद करना पड़ा।

परसाई जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे, उनके कहानीसंग्रह हैं। रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज उनके उपन्यास हैं। तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेइमानी की परत, पगडंडियों का जमाना, शिकायत मुझे भी है, निठल्ले की डायरी उनके निबंध संग्रह हैं। वैष्णव की फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, प्रेमचंद के फटे जूते, माटी कहे कुम्हार से, आवारा भीड़ के खतरे, सदाचार का ताबीज, तुलसीदास चंदन घिसैं आदि उनके व्यंग्य लेख हैं।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सहज एवं सरल भाषा में समाज की विसंगतियों और कुरीतियों पर हास्य-व्यंग्य के माध्यम से चुटीला प्रहार परसाई जी की अन्यतम विशेषता है। 10 अगस्त 1995 ई० को इस महान रचनाकार का देहान्त हो गया।

एक बार एक वन के पशुओं को ऐसा लगा कि वे सभ्यता के उस स्तर पर पहुँच गये हैं, जहाँ उन्हें एक अच्छी शासन-व्यवस्था अपनाना चाहिए।

और, एक मत से यह तय हो गया कि वन-प्रदेश में प्रजातन्त्र की स्थापना हो।

शीघ्र ही एक समिति बैठी, शीघ्र ही एक विधान बन गया और शीघ्र ही एक पंचायत के निर्माण की घोषणा हो गई, जिसमें वन के तमाम पशुओं के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हों और जो वन-प्रदेश के लिए कानून बनाये और शासन करे।

पशु-समाज में इस 'क्रांतिकारी' परिवर्तन से हर्ष की लहर दौड़ गई कि सुख, समृद्धि और सुरक्षा का स्वर्ण-युग अब आया और वह आया।

जिन वन-प्रदेश में हमारी कहानी ने चरण धरे हैं, उसमें भेड़ें बहुत थीं-निहायक नेक, ईमानदार, कोमल, विनयी, दयालु, निर्दोष पशु, जो घास तक को फूँक फूँक कर खाता है।

भेड़ों ने सोचा कि अब हमारा भय दूर हो जायेगा। हम अपने प्रतिनिधियों से कानून बनवायेंगे कि कोई जीवधारी किसी को न सताये, न मारे। सब जियें और जीने दें। शांति, स्नेह, बन्धुत्व और सहयोग पर समाज आधारित हो।

और, इधर भेड़ियों ने सोचा कि हमारा अब संकट-काल आया। भेड़ों की संख्या इतनी अधिक है कि पंचायत में उनका ही बहुमत होगा। और अगर उन्होंने कानून बना दिया कि कोई पशु किसी को न मारे, तो हम खायेंगे क्या ? क्या हमें घास चबाना सीखना पड़ेगा ?

ज्यों ज्यों चुनाव समीप आता, भेड़ों का उल्लास बढ़ता जाता।

ज्यों-ज्यों चुनाव समीप आता जाता भेड़ियों का दिल बैठता जाता।

एक दिन बूढ़े सियार ने भेड़िये से कहा, ''मालिक आज कल आप बड़े उदास रहते हो।''

हर भेड़िये के आसपास २-४ सियार रहते ही हैं। जब भेड़िया अपना शिकार खा लेता है, तब ये सियार हड्डियों में लगे मांस को कुतर खाते हैं, और हड्डियाँ चूसते रहते हैं। ये भेड़िये के आसपास दुम हिलाते चलते हैं, उसकी सेवा करते हैं, और मौके बेमौके 'हुआ-हुआ' चिल्लाकर उसकी जय बोलते हैं।

तो बूढ़े सियार ने बड़ी गम्भीरता से पूछा, ''महाराज, आपके मुखचंद्र पर चिन्ता के मेघ क्यों छाये हैं ?'' वह सियार कुछ कविता भी करना जानता होगा शायद दूसरे की उक्ति को अपनी बनाकर कहता हो।

खैर भेड़िये ने कहा, ''तुझे क्या मालूम नहीं है कि वन-प्रदेश में नई सरकार बनने वाली है ? हमारा राज तो अब चला।''

सियार ने दाँत निपोरकर कहा, ''हम क्या जानें महाराज ! हमारे तो आप ही 'माई बाप' हो। हम तो कोई और सरकार नहीं जानते। आपका दिया खाते हैं, आपके गुन गाते हैं।''

भेड़िये ने कहा ''मगर अब समय ऐसा आ रहा है कि सूखी हड्डियाँ भी चबाने को नहीं मिलेंगी।''

सियार सब जानता था, मगर जानकर भी न जानने का नाट्य करना न आता, तो सियार शेर न हो गया होता !

आखिर भेड़िये ने वन प्रदेश के पंचायत के चुनाव की बात बूढ़े सियार को समझाई और बड़े गिरे मन से कहा, ''चुनाव अब पास आता जा रहा है। अब यहाँ से भागने के सिवा कोई चारा नहीं है। पर जावें भी कहाँ ?''

सियार ने कहा, मालिक सरकस में भरती हो जाइये।''

भेड़िये ने कहा, ''अरे वहाँ भी शेर और रीछ को तो ले लेते हैं, पर हम इतने बदनाम हैं कि हमें वहाँ भी कोई नहीं पूछता।''

''तो'' सियार ने खूब सोचकर कहा, ''अजायबघर में चले जाइये।''

भेड़िये ने कहा, ''अरे वहाँ भी जगह नहीं है। सुना है वहाँ तो आदमी रखे जाने लगे।''

बूढ़ा सियार अब ध्यानमग्न हो गया। उसने एक आँख बंद की, नीचे के ओंठ को ऊपर के दाँत से दबाया और एकटक आकाश की तरफ देखने लगा जैसे विश्वात्मा से कनेक्शन जोड़ रहा हो। फिर बोला, ''बस सब समझ में आ गया। मालिक, अगर पंचायत में आपकी भेड़िया जाति का बहुमत हो जाय तो ?''

भेड़िया चिढ़कर बोला, ''कहाँ की आसमानी बात करता है ? अरे हमारी जाति कुल १० फीसदी है, और भेड़ें तथा अन्य छोटे पशु ९० फीसदी। भला वे हमें काहे को चुनेंगे ? अरे कहीं जिंदगी अपने को मौत के हाथ सौंप सकती है ? मगर हाँ, ऐसा हो सकता, तो क्या बात थी ?''

बूढ़ा सियार बोला, ''आप खिन्न मत होइये सरकार। एक दिन का समय दीजिए। कल तक कोई योजना बन ही जायगी। मगर एक बात है। आपको मेरे कहे अनुसार कार्य करना पड़ेगा !''

मुसीबत में फँसे भेड़िये ने आखिर सियार को अपना गुरु माना, और आज्ञा पालन की शपथ ली।

दूसरे दिन बूढ़ा सियार अपने साथ तीन सियारों को लेकर आया। उनमें से उसने एक को पीले रंग में रंग दिया था, दूसरे को नीले में और तीसरे को हरे में।

भेड़िये ने देखा और पूछा, ''अरे ये कौन हैं ?''

बूढ़ा सियार बोला, ''ये भी सियार हैं, सरकार–रँगे सियार हैं। आपकी सेवा करेंगे। आपके चुनाव का प्रचार करेंगे।''

भेड़िये ने शंका की, ''मगर इनकी बात मानेगा कौन ? ये तो वैसे ही छल–कपट के लिए बदनाम हैं।''

सियार ने भेड़िये का हाथ चूमकर कहा, ''बड़े भोले हैं आप सरकार ! अरे मालिक, रूप–रंग बदल देने से तो, सुना है आदमी तक बदल जाते हैं। फिर ये तो सियार हैं।''

और, तब बूढ़े सियार ने भेड़िये का भी रूप बदला। मस्तक पर तिलक लगाया, गले में कंठी पहिनाई और मुँह में घास के तिनके खोंस दिये। बोला, ''अब आप पूरे संत हो गये। अब भेड़ों की सभा में चलेंगे। मगर तीन बातों का ख्याल रखना–अपनी हिंसक आँखों को ऊपर मत उठाना, हमेशा जमीन की ओर देखना। और कुछ बोलना मत, नहीं तो सब पोल खुल जायेगी। और वहाँ बहुत सी भेड़ें आयेंगी, सुन्दर–सुन्दर, मुलायम–मुलायम। तो कहीं किसी को तोड़ मत खाना''

भेड़िये ने पूछा, ''लेकिन ये रंगे सियार क्या करेंगे ? ये किस काम आवेंगे ?''

बूढ़ा सियार बोला, ''ये बड़े काम के हैं। आपका सारा प्रचार तो ये ही करेंगे। इन्हीं के बल पर आप चुनाव लड़ेंगे। यह पीला वाला बड़ा विद्वान है, विचारक है, कवि भी है, लेखक भी। यह नीला सियार नेता और पत्रकार है। और यह हरा धर्मगुरु है। बस अब चलो।''

''जरा ठहरो !'' भेड़िये ने बूढ़े सियार को रोका, ''कवि, लेखक, नेता, विचारक–ये तो सुना है बड़े अच्छे लोग होते हैं। और ये तीनों–''

बात काटकर सियार बोला, ''ये तीनों सच्चे नहीं हैं, रँगे हुये हैं महाराज। अब चलिये, देर मत करिये।''

और वे चले। आगे बूढ़ा सियार था, उसके पीछे रँगे सियारों के बीच भेड़िया चल रहा था–मस्तक पर तिलक, गले में कंठी, मुख में घास के तिनके। धीरे–धीरे चल रहा था, अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक, सिर झुकाये विनय की मूर्ति !

उधर एक स्थान पर सहस्त्रों भेड़ें इकट्ठी हो गई थीं, उस संत के दर्शन के लिये जिसकी चर्चा बूढ़े सियार ने फैला रखी थी।

चारों सियार भेड़िये की जय बोलते हुये भेड़ों के झुंड के पास आये।

बूढ़े सियार ने एक बार जोर से संत भेड़िये की जय बोली ! भेड़ों में पहले से ही यहाँ–वहाँ बैठे सियारों ने भी जय–ध्वनि की।

भेड़ों ने देखा तो बोली, ''अरे भागो, यह तो भेड़िया है।''

तुरन्त बूढ़े सियार ने उन्हें रोककर कहा, ''भाईयों और बहिनों ! अब भय मत करो। भेड़िया राजा संत हो गये हैं। उन्होंने हिंसा बिलकुल छोड़ दी है। उनका 'हृदय–परिवर्तन' हो गया है। वे आज सात दिनों से घास खा रहे हैं। रात दिन भगवान के भजन और परोपकार में लगे रहते हैं। उन्होंने अपना जीवन जीव–मात्र की सेवा के लिए अर्पित कर दिया है। अब वे किसी का दिल नहीं दुखाते; किसी का रोम तक नहीं छूते। भेड़ों से उन्हें विशेष प्रेम है। इस जाति ने जो कष्ट सहे हैं, उनकी याद करके अभी भी भेड़िया संत की आँखों में आँसू आ जाते हैं। उनकी अपनी भेड़िया जाति ने जो अत्याचार आप पर किये हैं उनके कारण भेड़िया संत का माथा लज्जा से जो झुका है, सो झुका ही हुआ है। परन्तु अब वे शेष जीवन आपकी सेवा में लगाकर तमाम पापों का प्रायश्चित करेंगे। आज सबेरे की ही बात है कि एक मासूम भेड़ के बच्चे के पाँव में काँटा लग गया, तो भेड़िया संत ने उसे दाँतों से निकाला, दाँतों से ! पर जब वह बेचारा कष्ट से चल बसा, तो भेड़िया संत ने सम्मान–पूर्वक उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की ! उनके घर के पास जो हड्डियों का ढेर लगा है, उसके दान की

घोषणा उन्होंने आज ही सबेरे की है। अब तो वे सर्वस्व त्याग चुके हैं। अब आप उनसे भय मत करो। उन्हें अपना भाई समझो। बोलो सब मिलकर–संत भेड़िया जी की जय!''

भेड़िया जी अभी तक उसी तरह गर्दन डाले विनय की मूर्ति बने बैठे थे। बीच में कभी कभी सामने की ओर इकट्ठी भेड़ों को देख लेते और टपकती हुई लार को गुटक जाते।

बूढ़ा सियार फिर बोला, ''भाइयों और बहिनों, मैं भेड़िया संत से अपने मुखारविंद से आप को प्रेम और दया का संदेश देने की प्रार्थना करता। पर प्रेम–वश उनका हृदय भर आया है, वे गद्‌गद् हो गये हैं, और भावातिरिक से उनका कंठ अवरुद्ध हो गया है। वे बोल नहीं सकते। अब आप इन तीनों रंगीन प्राणियों को देखिये। आप इन्हें न पहिचान पाये होंगे। पहिचानें भी कैसे? ये इस लोक के जीव तो हैं नहीं। ये तो स्वर्ग के देवता हैं जो हमें सदुपदेश देने के लिए पृथ्वी पर उतरते हैं। ये पीले विचारक हैं, कवि हैं, लेखक हैं। नीले नेता हैं और स्वर्ग के पत्रकार हैं। और हरे वाले धर्मगुरु हैं। अब कविराज आपको स्वर्ग संगीत सुनावेंगे। हाँ कवि जी––''

पीले सियार को ''हुआ हुआ'' के सिवा कुछ और तो आता नहीं था। ''हुआ हुआ'' चिल्ला दिया। शेष सियार भी 'हुआ हुआ' बोल पड़े। बूढ़े सियार ने आँख के इशारे से शेष सियारों को मना किया और चतुराई से बात को यों कहकर सम्हाला, ''भाई कवि जी तो कोरस में गीत गाते हैं। पर कुछ समझे आप लोग? कैसे समझ सकते हैं? अरे, कवि की बात सबकी समझ में आ जावे तो वह कवि काहे का? उनकी कविता में से शाश्वत् के स्वर फूट रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जैसे स्वर्ग में परमात्मा, वैसे ही पृथ्वी पर भेड़िया। हे भेड़िया जी, हे महान्! आप सर्वत्र व्याप्त हैं, सर्वशक्तिमान हैं। प्रात:काल सन्ध्या आपके मस्तक पर तिलक करती है, साँझ को ऊषा आपका मुख चूमती है, पवन आपकी अग्नि पर पंखा करती है, और रात्रि को आपकी ज्योति लक्ष–लक्ष खंड होकर आकाश में तारे बनकर चमकती है। हे विराट! आपके चरणों में इस क्षुद्र का प्रणाम है।

फिर नीले रंग के सियार ने कहा, ''निर्बलों की रक्षा बलवान ही कर सकते हैं। भेड़ें कोमल हैं, निर्बल हैं, अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं। भेड़िया बलवान है, इसलिए उसके हाथ में अपने हितों को छोड़ निश्चिंत हो जाओ। वह भी तुम्हारा भाई है। आप एक ही जाति के हो। तुम भेड़, वह भेड़िया। कितना कम अन्तर है! और बेचारा भेड़िया व्यर्थ ही बदनाम कर दिया गया है कि वह भेड़ों को खाता है। अरे खाते और हैं, हड्डी उसके द्वार पर फेंक जाते हैं। ये व्यर्थ बदनाम होते हैं। तुम लोग तो पंचायत में बोल भी नहीं पाओगे। भेड़िया बलवान है। यदि तुम पर कोई अन्याय होगा, तो डटकर लड़ेगा। इसलिए अपनी हित–रक्षा के लिए भेड़ियों को चुनकर पंचायत में भेजो। बोलो संत भेड़िया की जय।''

फिर हरे रंग के धर्मगुरु ने उपदेश दिया, ''जो यहाँ त्याग करेगा, वह उस लोक में पायेगा। जो यहाँ दुख भोगेगा, वह वहाँ सुख पायेगा। जो यहाँ राजा बनायेगा, वहाँ राजा बनेगा। जो यहाँ वोट देगा, वह वहाँ 'वोट' पायेगा। इसलिए सब मिलकर भेड़िया को वोट दो। वे दानी हैं, परोपकारी हैं, संत है। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।''

यह एक भेड़िये की कथा नहीं है, यह सब भेड़ियों की कथा है। सब जगह इस प्रकार प्रचार हो गया और भेड़ों को विश्वास हो गया कि भेड़िये से बड़ा उनका कोई हित–चिन्तक और हितरक्षक नहीं है।

और अब पंचायत का चुनाव हुआ तो भेड़ों ने अपनी हित–रक्षा के लिये भेड़ियों को चुना।

और पंचायत में भेड़ों के हितों की रक्षा के लिए भेड़िये प्रतिनिधि बनकर गये।

और पंचायत में भेड़ियों ने भेड़ों की भलाई के लिए पहिला कानून यह बनाया:–

हर भेड़िये को सबेरे नाश्ते के लिये भेड़ का एक मुलायम बच्चा दिया जाय, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़ तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिये, इसलिये आधी भेड़ दी जाय।''

बूढ़ी काकी

मुंशी प्रेमचंद

लेखक परिचय :

कलम के जादूगर मुंशी प्रेमचंद का जन्म वाराणसी जिले के लमही गाँव में 31 जुलाई 1880 ई० को हुआ। विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करके इन्होंने कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। शिक्षा विभाग में सहविद्यालय निरीक्षक के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। बाद में तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर इस पद से त्याग पत्र दे दिया और आजीवन साहित्य सृजन में लगे रहे। प्रेमचंद जी उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित प्रथम कहानी संग्रह 'सोजे वतन' अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त करने के बाद प्रेमचंद के नाम से हिन्दी में लिखने लगे। इन्होंने माधुरी, हंस, जागरण आदि पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — सेवा-सदन, कायाकल्प, निर्मला, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान उनके प्रमुख उपन्यास हैं। सोजे वतन, प्रेमद्वादशी, प्रेमपूर्णिमा आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इनकी कहानियों को मानसरोवर (आठ भागों में) में संग्रहित किया गया है। कर्बला, संग्राम, बलि की वेदी उनके नाटक हैं। 'महाजनी सभ्यता' उनका निबंध है।

प्रेमचंद जी अपने युग के प्रतिनिधि कथाकार थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समस्याओं एवं कुरीतियों का यथार्थ निरूपण हुआ है। पूस की रात, बूढ़ी काकी, मंत्र, ईदगाह, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा, बड़े घर की बेटी, नशा आदि इनकी बहुचर्चित कहानियां है। इनकी कहानियों में मानवीय संवेदना सजीव हो उठी है।

इनकी मृत्यु 8 अक्टूबर 1936 ई० को हुई।

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वास्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियाँ नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे! पृथ्वी पर पड़ी रहती और घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिणाम पूर्ण न होता, अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़-फाड़ कर रोती थीं।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था। बेटे तरुण हो-हो कर चल बसे थे। अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। भतीजे ने सारी सम्पत्ति लिखाते समय खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, किंतु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाये हुए सब्जबाग थे यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़ दो सौ रुपये से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी को पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। इसमें उनके भतीजे पंडित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव के सज्जन थे, किंतु उसी समय तक जब तक कि उनके कोष पर कोई आँच न आये। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थी। अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता हो उन्हें कदाचित कोई आपत्ति न होगी, परंतु विशेष व्यय का भय उनकी सचेष्टा को दबाये रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगती तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते। लड़कों को बुड्ढ़ों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता का यह रंग देखते तो वे बूढ़ी काकी को और सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता! काकी चीख मार कर रोतीं, परंतु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती हैं, अतएव उनके संताप और आर्त्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ, काकी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगतीं तो रूपा घटनास्थल पर आ पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्वा कृपाण का कदाचित ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उपद्रव-शांति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई-चबेना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महँगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों में सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

(२)

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुंड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट विरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों की ''वाह,वाह'' पर ऐसा खुश हो रहा था मानो इस वाह-वाह का यथार्थ में वही अधिकारी है। दो-एक अँग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन के प्रबन्ध में व्यस्त थी। भट्टियों पर कड़ाह चढ़ रहे थे। एक में पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ निकल रही थीं, दूसरे में अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हण्डे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसालो की क्षुधावर्द्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी!

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भांति बैठी हुई थीं। यह स्वाद मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन ही मन विचार कर रही थीं, सम्भवत: मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया। मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोच कर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुन के भय से वह रो न सकीं।

''आहा! कैसी सुगंधि है? अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों ही के लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भर पेट पूड़ियाँ मिलें?'' यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजे में हूक-सी उठने लगी। परंतु रूपा के भय से उन्होंने फिर मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्हीं दु:खदायक विचारों में डूबी रही! घी और मसालों की सुगंधि रह-रह कर मन को आपे से बाहर किये देती थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूड़ियों का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ; आज लाडली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकड़े सदा दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपा ने भली-भाँति मोयन दिया होगा। कचौड़ियों में अजवाइन और इलायची की महँक आ रही होगी। एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में ले कर देखती। क्यों न चलकर कड़ाह के सामने ही बैठूँ। पूड़ियाँ छन-छन कर तैयार होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी। फूल हम घर में भी सूँघ सकते हैं; परंतु वाटिका में कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ूँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई में चौखट से उतरी और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास आ बैठी। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।

रूपा उस समय कार्य-भार से उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में, कभी कड़ाह के पास आती, कभी भंडार में जाती। किसी ने बाहर से आ कर कहा—''महाराज ठंडाई माँग रहे हैं।'' ठंडाई देने लगी। इतने में फिर किसी ने आकर कहा—''भाट आया है, उसे कुछ दे दो।'' भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा—''अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है? जरा ढोल मजीरा उतार दो'' बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढ़ती थी, परंतु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ीं। प्यास से स्वयं कंठ सूख रहा था। गर्मी के मारे फुँकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। वह भी खटका था कि जरा आँख हटी और चीजों की लूट मची। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी देखा तो जल गयी। क्रोध न रुक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं, मन में क्या कहेंगी, पुरुषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेंढ़क केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झटककर बोली—ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गयी। जल जाय ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होती तो न जाने किसकी हाड़ी में मुँह डालती? गाँव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भर पेट खाने को नहीं पाती तभी तो इस तरह मुँह बाये फिरती है। डायन न मरे न माँचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा कर दम लेगी। इतना ठूँसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाय, परंतु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाय।

बूढ़ी काकी ने सिर न उठाया; न रोई न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं। आवाज ऐसी कठोर थी कि हृदय और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे। नदी में जब करार का कोई वृहद खंड कटकर गिरता है तो आस-पास का जलसमूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है!

(३)

भोजन तैयार हो गया। आँगन में पत्तलें पड़ गयीं, मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानों के नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ किन्तु कुछ हट कर भोजन करने बैठे थे, परंतु सभ्यतानुसार जब तक सब के सब खा न चुके कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े लिखे थे, सेवकों के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थे। वे इस बंधन को व्यर्थ और बे-सिर-पैर की बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहाँ से कहाँ गयी। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दीबाजी पर दु:ख था। सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन कर न चुकेंगे, घरवाले कैसे खायेंगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने न आयेगा, न जाऊँगी।

मन ही मन इसी प्रकार का विचार कर वह बुलावे की प्रतीक्षा करने लगीं। परंतु घी की रुचिकर सुबास बड़ी धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रही थी। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गयी होगी! अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहें हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिए लेट गयीं। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसी की आवाज नहीं सुनायी देती। अवश्य ही लोग खा-पी कर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गयी है, क्या जाने न बुलाये। सोचती हो कि आप ही आवेंगी, वह कोई मेहमान तो नहीं जो उन्हें बुलाऊँ। बूढ़ी काकी चलने के लिए तैयार हुईं। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आयेंगी, उनकी स्वादेन्द्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह-तरह के मंसूबे बाँधे—पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से, कचौड़ियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो माँग-माँग कर खाऊँगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिन के बाद पूड़ियाँ मिल रही हैं तो मुँह जूठा करके थोड़े ही उठ जाऊँगी। वह उकड़ूँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई आँगन में आयीं। परंतु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उँगलियाँ चाटता था, कोई तिरछे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं। कोई इस चिंता में था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परंतु दूसरा दोना माँगते संकोच करता था कि इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुँची। कई आदमी चौंक कर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे— अरे यह बुढ़िया कौन है। यह कहाँ से आ गयी? देखो किसी को छू न दे।

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गये। पूड़ियों का थाल लिये खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही झपटकर उसका टेटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अँधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशा रूपी वाटिका लू के एक झोंके में नष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया। बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परंतु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उनकी निर्लज्जता के लिए दंड देने का निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर, दीनता पर, हतज्ञान पर किसी को करूणा न आयी थी। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली को काकी से अत्यंत प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल-विनोद और चंचलता की उसमें गंध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा तो लाडली का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुँझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत-सी पूड़ियाँ नहीं दे देते? क्या मेहमान सब की सब खा जायेंगे? और यदि काकी ने मेहमानों के पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परंतु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिलकुल न खायी थीं। अपनी गुड़ियों की पिटारी में बंद कर रखी थीं। वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी, पूड़ियाँ देख कर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगी!

(४)

रात के ग्यारह बज गये थे। रूपा आँगन में पड़ी सो रही थी। लाडली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्माँ सो रही हैं; तो वह चुपके से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अँधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थी, और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडली की दृष्टि द्वार के सामने वाले नीम की ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखलाई दे रही है। मारे भय के उसने आँखें बंद कर लीं। इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाडली को ढाढ़स हुआ। कई सोये हुए मनुष्यों के बदले एक भागता हुआ कुत्ता उनके लिए अधिक धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकी की कोठरी की ओर चली।

(५)

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़ कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाये लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरों से टकराये तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका, वे मूर्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुई तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझीं कि सब लोग खा-पी कर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी ? राम! क्या खाऊँ ? पेट में अग्नि धधक रही है ? हा ! किसी ने मेरी सुधि न ली ! क्या मेरा पेट काटने से धन जुड़ जायगा ? इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाय ? उसका जी क्यों दुखावें ? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ ? इस पर यह हाल। मैं अंधी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ न बूझूँ। यदि आँगन में चली गयी तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दी। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दीं, तब अब क्या देंगे ?

यह विचार कर काकी निराशामय संतोष के साथ लेट गयीं। ग्लानि से गला भर-भर आता था, परंतु मेहमानों के भय से रोती न थीं।

सहसा उनके कानों में आवाज आयी—''काकी उठो; मैं पूड़ियाँ लायी हूँ।'' काकी ने लाडली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथों से लाडली को टटोला और उसे गोद में बैठा लिया। लाडली ने पूड़ियाँ निकाल कर दीं। काकी ने पूछा— क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं ?

लाडली ने कहा— नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।

काकी पूड़ियों पर टूट पड़ीं। पाँच मिनट में पिटारी खाली हो गयी। लाडली ने पूछा— काकी पेट भर गया।

जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भाँति इन थोड़ी पूड़ियों ने काकी की क्षुधा और इच्छा को और उत्तेजित कर दिया था। बोलीं— नहीं बेटी, जाकर अम्माँ से और माँग लाओ।

लाडली ने कहा— अम्माँ सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेंगी।

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकाल कर वे खा गयीं। बार-बार होंठ चाटती थीं चटखारे भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। संताष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का स्मरण करना उन्हें मदांध बनाता है। काकी का अधीर मन इच्छा के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाडली से बोलीं— मेरा हाथ पकड़ कर वहाँ ले चलो जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलों के पास बैठा दिया। दीन, क्षुधातुर, हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन-चुन कर भक्षण करने लगी। ओह दही कितना स्वादिष्ट था, कचौड़ियाँ कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अंतिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएँ एक ही केंद्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी में यह केंद्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाई के इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा-उठा कर खा रही है। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गर्दन पर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों की जूठी पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखनेवालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानों जमीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसार पर कोई विपत्ति आनेवाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा और भय से उसकी आँखें भर आयीं। इस अधर्म के पाप का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन-मंडल की ओर हाथ उठाकर कहा— परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो। इस अधर्म का दंड मुझे मत दो, नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जायगा।

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे। वह सोचने लगी—हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयाराम भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये, परंतु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाये, उसे इस उत्सव में भी भर पेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।

रूपा ने दीया जलाया, अपने भंडार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजाकर लिए हुए बूढ़ी काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परंतु उनमें किसी को वह परमानंद प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर हुआ। रूपा ने कंठावरुद्ध स्वर में कहा— काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।

भोले-भाले बच्चों की भाँति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुला कर बैठी हुई खाना खा रही थी। उनके एक-एक रोयें से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्य का आनंद लेने में निमग्न थी।

छुट्टी

रवीन्द्रनाथ टैगोर

लेखक परिचय :

रवींद्रनाथ ठाकुर नोबेल पुरस्कार पाने वाले पहले भारतीय हैं। इनका जन्म 7 मई 1861 को बंगाल के एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। छोटी उम्र में ही स्वाध्याय से अनेक विषयों का ज्ञान अर्जित कर लिया। बैरिस्ट्री पढ़ने के लिए विदेश भेजे गये लेकिन बिना परीक्षा दिये ही लौट आए।

रवींद्रनाथ की रचनाओं में लोक-संस्कृति का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित होता है। प्रकृति से इन्हें गहरा लगाव था। इन्होंने लगभग एक हजार कविताएं और दो हजार गीत लिखे हैं। चित्रकला, संगीत और भावनृत्य के प्रति इनके विशेष अनुराग के कारण रवींद्र संगीत नाम की एक अलग धारा का ही सूत्रपात हो गया। इन्होंने शांति निकेतन नाम की एक शैक्षिक और सांस्कृतिक संस्था की स्थापना की। यह अपनी तरह का अनूठा संस्थान माना जाता है। काव्यकृति 'गीतांजलि' के लिए इन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रमुख रचनाएँ हैं — नैवैद्य, पूरबी, बलाका, क्षणिका, चित्र और सांध्यगीत, काबुलीवाला और सैकड़ों अन्य कहानियाँ। गोरा, घरे बाइरे इनके प्रमुख उपन्यास हैं । रवीन्द्र नाथ जी ने अनेक निबंधों की भी रचना की है।

बालकों के सरदार फटिक चक्रवर्ती के दिमाग में चट से एक नये विचार का उदय हुआ। नदी के किनारे एक विशाल शाल की लकड़ी मस्तूल में रूपान्तरित होने की प्रतीक्षा में पड़ा था; तय हुआ, उसको सब मिलकर लुढ़काते हुए ले चलेंगे।

जिस व्यक्ति की लकड़ी है उसे अपनी जरूरत के समय कितना विस्मय, खीझ और असुविधा होगी, उसी का हिसाब लगाकर बालकों ने इस प्रस्ताव का पूरी तरह अनुमोदन किया।

जब सभी मनोयोग के साथ कमर कसकर कार्य में प्रवृत्त होने की तैयारी कर रहे थे, इसी समय फटिक का छोटा भाई माखनलाल गम्भीर भाव से उस लकड़ी के कुंदे पर जा बैठा; उसकी इस प्रकार की उदार उदासीनता को देख लड़के कुछ उदास हो गये।

एक ने आकर डरते-डरते उसे थोड़ा-बहुत ठेला लेकिन वह इससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ, यह अकाल-तत्त्वज्ञानी मानव सब प्रकार की क्रीड़ाओं की असारता के सम्बन्ध में नीरव भाव से चिन्ता करने लगा।

फटिक आकर अकड़कर बोला, ''देख, तू मार खाएगा। फौरन उठ जा।''

इस पर वह जरा हिल-डुलकर और भी अच्छी तरह से आसन पर स्थायी दखल जमाकर बैठ गया।

ऐसे अवसर पर सबके सामने राज-सम्मान की रक्षा के लिए ढीठ छोटे भाई के गाल पर फौरन एक चपत जड़ देना ही फटिक का कर्त्तव्य था-पर साहस नहीं हुआ। लेकिन उसने ऐसा भाव दिखाया जैसे चाहने पर अभी उसको भली-भाँति सबक सिखा सकता है लेकिन सिखाया नहीं; क्योंकि पहले की अपेक्षा और एक दूसरा अच्छा खेल उसके दिमाग में आया, उसमें और अधिक मजा है। प्रस्ताव रखा कि माखन के साथ ही उस लकड़ी को लुढ़काना शुरू किया जाए।

माखन ने सोचा, इसी में उसका गौरव है; किन्तु अन्यान्य पार्थिव गौरवों की तरह ही इससे जुड़ी विपदाओं की सम्भावनाएँ हैं, यह उसके या दूसरों के दिमाग में आयी नहीं।

लड़कों ने कमर कसकर ठेलना आरम्भ किया-'मारो ठेला...हेंइओ...शाबाश...जवान...हेंइओ।' कुन्दे के एक घेरा घूमते-न-घूमते माखन अपने गाम्भीर्य गौरव और तत्त्वज्ञान के साथ धराशायी हो गया।

खेल के शुरू में ही इस प्रकार आशातीत फलप्राप्ति से दूसरे बालक विशेष प्रसन्न हुए, लेकिन फटिक कुछ घबराया। माखन उसी क्षण भूमि शय्या छोड़ फटिक के ऊपर टूट पड़ा और उसे अंधाधुन्ध पीटने लगा। उसके नाक-मुँह खसोटकर रोता हुआ घर की ओर चल दिया। खेल बीच में रुक गया।

फटिक कुछ कांस उखाड़ जल में एक अधडूबी नाव की गलही के ऊपर चढ़, बैठकर चुपचाप कांस की जड़े चबाने लगा।

इसी समय एक बाहरी नाव घाट पर आ लगी। एक अधेड़ उम्र के सज्जन बाहर निकले। उनकी मूँछे काली थीं और बाल पके थे। उन्होंने बालक से पूछा, "चक्रवर्ती का घर कहाँ है?"

बालक डण्ठल चबाते-चबाते बोला, "वह उधर।" किन्तु उसका संकेत किस ओर था.... यह समझना किसी के लिए भी आसान नहीं था।

सज्जन ने फिर पूछा, "किधर?"

"मालूम नहीं।" कहकर वह पहले की तरह ही तिनके से रस ग्रहण में प्रवृत्त रहा। तब वे सज्जन दूसरे व्यक्ति की सहायता से चक्रवर्ती के घर की खोज में चले।

तुरंत बाघा बाग्दी ने आकर कहा, "फटिक भैया, माँ बुला रही है।"

"फटिक बोला, मैं नहीं जाऊँगा।"

बाघा बलपूर्वक उसे गोदी में भरकर उठा ले चला; फटिक निष्फल क्रोध में हाथ-पैर पटकने लगा।

फटिक को देखते ही उसकी माँ अग्निमूर्ति होकर बोली, "फिर तूने माखन को मारा?"

फटिक ने कहा, "नहीं मारा नहीं है।"

"फिर झूठ बोल रहा है।"

"कभी मारा भी है...माखन से पूछो।"

माखन से पूछने पर माखन ने अपनी पहली शिकायत का समर्थन करते हुए कहा, ''हाँ, मारा है।''

फिर फटिक से और सहा नहीं गया। तेजी से जाकर माखन को कसकर चपत जमाते हुए कहा, ''फिर झूठ।''

माँ ने माखन का पक्ष लेकर फटिक को बड़े वेग से झकझोरा और उसकी पीठ पर जोरों से दो-तीन थप्पड़ जड़ दिये। फटिक ने माँ को ढकेल दिया।

माँ ने चिल्लाकर कहा, ''अरे तूने मेरी देह पर हाथ उठाया।''

इसी समय अधेड़ सज्जन ने घर में प्रवेश करते हुए कहा, ''तुम लोगों ने क्या आफत मचा रखी है?''

फटिक की माँ आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत हो बोली, ''अरे, भैया! तुम कब आये?''-कहते हुए झुककर प्रणाम किया।

बहुत दिन हुए भैया पश्चिम की ओर काम करने चले गये थे। इसी बीच फटिक की माँ की दो सन्तानें हुईं, वे काफी बड़ी हो गयी; उसके पति की मृत्यु हुई, लेकिन इस बीच एक बार भी भैया से मिलना नहीं हुआ। आज बहुत दिनों बाद घर लौट कर विश्वम्भर बाबू अपनी बहन से मिलने आये हैं।

कुछ दिन बड़े समारोह में बीते। अन्त में विदा के दो-एक दिन पूर्व विश्वम्भर बाबू ने अपनी बहन से बच्चों की पढ़ाई-लिखाई एवं मानसिक विकास के विषय में पूछा। उत्तर में फटिक का कहना न मानना, उच्छृंखलता, पढ़ने में अरुचि और माखन के शान्त, सुशील स्वभाव और विद्यानुराग का विवरण सुना।

उनकी बहन ने कहा, ''फटिक ने मुझे बड़ा परेशान कर रखा है।''

यह सुनने के बाद विश्वम्भर बाबू ने प्रस्ताव किया कि वे फटिक को कलकत्ते ले जाकर अपने पास रख उसकी शिक्षा की व्यवस्था करेंगे।

विधवा बहन इस प्रस्ताव पर सहज ही राजी हो गयी।

फटिक से पूछा, ''क्यों रे, तू मामा के साथ कलकत्ते जाएगा?''

फटिक उछलकर बोला, ''जाऊँगा।''

हालांकि फटिक को भेजने में माँ को आपत्ति नहीं थी, क्योंकि उनके मन में हमेशा से यह आशंका बनी रहती थी कि यह किसी दिन माखन को पानी में ढकेल न दे या उसका सिर ही न फोड़ दे, पता नहीं कौन-सी दुर्घटना न घटा बैठे, तथापि फटिक का जाने में ऐसा आग्रह देख वे कुछ दुःखी हुई।

'कब जाना है', 'किस समय जाना है' आदि पूछते हुए मामा को उसने हैरान कर दिया, उत्साह के कारण उसे रात में नींद नहीं आती।

अन्त में जाते समय आनन्द की उदारतावश अपनी मछली पकड़ने की बंसी, पतंग, लट्टू सब कुछ माखन को पुत्र-पौत्रादि क्रम से पूरे अधिकार से दे गया।

कलकत्ते में मामा के घर पहुँचकर सबसे पहले उसका मामी के साथ परिचय हुआ। मामी इस अनावश्यक परिवार-वृद्धि से मन-ही-मन विशेष सन्तुष्ट हुई हों, ऐसा नहीं कह सकते। अपने तीन बच्चों के साथ वे अपने ढंग से घर-गृहस्थी जमाये बैठी थीं, इसके बीच सहसा एक तेरह साल के अपरिचित,

अशिक्षित, गँवई लड़के को ला उपस्थित करने पर एक विप्लव की संभावना दीख पड़ी। विश्वम्भर की उम्र इतनी हो आयी पर समझदारी जरा भी नहीं बढ़ी।

विशेष रूप से तेरह-चौदह वर्ष के लड़के के समान दुनिया में और दूसरी बला नहीं। उसकी न तो शोभा ही है, न वह किसी काम में ही आता है। किसी में स्नेह का उद्रेक भी नहीं करता, उसका संग-सुख भी विशेष वांछनीय नहीं। उसके मुँह से बालकों-सी बचकानी बातें नखरेबाजी, बड़े-बूढ़ों जैसी बुजुर्गी और मुँह खोलना ही वाचालता मानी जाती है। वस्त्रादि के परिमाप की रक्षा किये बिना अचानक ही वह अशोभन रूप से बढ़ उठता है; लोगों की दृष्टि में यह उसकी बेतुकी स्पर्धा जैसी प्रतीत होती है। उसके शैशव का लालित्य एवं कंठ-स्वर का माधुर्य सहसा ही विलीन हो जाता है; अत: लोग बाग मन-ही-मन उसे अपराधी ठहराए बिना नहीं रह पाते। शैशव और यौवन के अनेक दोष माफ किये जाते हैं पर इस समय की कोई स्वाभाविक और अनिवार्य चूक भी जैसे असह्य जान पड़ती है।

वह भी सब समय मन-ही-मन अनुभव करता कि दुनिया में कहीं भी वह ठीक से खप नहीं पाता है; इसलिए अपने अस्तित्व के विषय में हमेशा लज्जित और क्षमाप्रार्थी बना रहता है। बल्कि इस आयु में ही स्नेह के लिए किंचित् अतिरिक्त आकुलता मन में उत्पन्न होती है। इस समय यदि वह किसी सहृदय व्यक्ति से स्नेह या सख्य प्राप्त कर सके तो उसके हाथ अपने को बेच देता है। किन्तु उससे स्नेह करने का कोई साहस नहीं करता, क्योंकि सामान्य लोग इसे प्रश्रय देना समझते हैं। इसलिए उसका चेहरा और भाव बहुत कुछ लावारिस बाजारू कुत्ते जैसा हो जाता है।

इसलिए, ऐसी हालत में मातृगृह छोड़ दूसरा कोई भी अपरिचित स्थान बालक के लिए नरक जैसा है। चारों का स्नेह-शून्य विराग पग-पग पर उसे काँटे के समान चुभता है। इस आयु में सामान्यत: नारी जाति के प्रति एक श्रेष्ठ स्वर्गलोक के किसी दुर्लभ जीव की-सी धारणा बनने लगती है, इसलिए उसके पास से उपेक्षा अत्यन्त दु:सह जान पड़ती है।

मामी की स्नेहविहीन आँखों में वह एक कुग्रह के समान खटकता रहा है, यही बात फटिक को सबसे अधिक खलती है। अचानक मामी उसे कोई काम करने को कहती तो वह जितना जरूर है मन की मौज में उससे कहीं अधिक काम कर लेता-आखिर जब मामी उसके उत्साह को टोकती हुई कहती, ''बहुत हो गया, बहुत हो गया। उसमें अब तुम्हें हाथ नहीं लगाना है। तुम अब अपने काम में मन लगाओ। जाओ, जाकर कुछ पढ़ो।''-तब उसकी इस मानसिक उन्नति के प्रति मामी के इस प्यार के अभाव को वह अत्यन्त निष्ठुर अविचार मानता।

घर में ऐसा अनादर और उन पर चैन की साँस लेने की कोई जगह नहीं। दीवार के बीच अटके पड़े बार-बार उसे गाँव की याद आती।

एक बड़ी-सी पतंग को लेकर साँ-साँ शब्द के साथ उड़ाते फिरने वाला वह मैदान में 'ताइरे नाइरे नाइरे ना' (ऐसा मजा कहीं-नहीं, कहीं-नहीं) के साथ चिल्लाते और ऊँचे स्वर में स्वरचित रागिनी अलापते आवारा-सा घूमने-फिरने वाला, वह 'नदी का किनारा', दिन में जब-तब छलाँग मार तैरनेवाली वह 'सँकरी स्त्रोतस्विनी', वे सब साथी-संगाती 'धमाचौकड़ी की छूट' और सबसे बढ़कर वह अत्याचारिणी अविचारिणी 'माँ' उसके निरुपाय चित्त को रात-दिन आकर्षित करते रहते।

जानवर के समान एक प्रकार का अस्पष्ट स्नेह, केवल पास जाने की एक अन्ध चाह, केवल न देख पाने की एक अव्यक्त व्याकुलता, गोधूलि वेला में मातृहीन बछड़े के समान केवल एक आन्तरिक 'माँ-माँ' का क्रन्दन-उस लज्जित, शंकित शीर्ण-दीर्घ असुन्दर बालक के अन्तर में बार-बार आलोड़ित होता।

स्कूल में ऐसा निर्बोध और लापरवाह बालक दूसरा नहीं था। कोई बात पूछने पर मुँह बाये ताकता रहता। मास्टर जब मारना शुरू करते तब बोझ से लदे-फँदे, थके-माँदे गधे के समान वह चुपचाप सब कुछ सहता रहता। जब लड़कों के खेल की छुट्टी होती तब खिड़की के पास खड़े हो, दूर के घरों की छतों की ओर देखता रहता, तब उस दोपहर की धूप में किसी छत पर दो-एक लड़के-लड़कियाँ किसी खेल के बहाने क्षण भर के लिए दीख जाते तब उसका चित्त अधीर हो उठता।

एक दिन अनेक संकल्पों के बाद उसने बड़े साहस से मामा से पूछा, ''मामा, माँ के पास कब जाऊँगा?'' मामा ने कहा, ''स्कूल की छुट्टी तो हो।''

कार्तिक में पूजा की छुट्टी होगी, उसमें अभी बहुत देर है।

एक दिन फटिक ने अपनी स्कूल की किताब खो दी। एक तो सहज ही पाठ तैयार नहीं होता, दूसरे किताब खोकर वह बिल्कुल ही लाचार हो गया। मास्टर ने प्रतिदिन उसे मारना-पीटना और फटकारना शुरू किया। स्कूल में उसकी ऐसी हालत हो गयी कि उसके ममेरे भाईयों को उसके साथ रिश्तेदारी स्वीकार करने में लाज आती। उसके अपमानित होने पर जबरदस्ती ही सही, वे दूसरे बालकों से भी ज्यादा आनन्द प्रकट करते।

असह्य मालूम होने पर एक दिन फटिक ने मामी के पास जाकर अत्यन्त अपराधी के समान कहा, ''मेरी एक किताब खो गयी है।''

मामी ने ओठों के किनारों पर नाराजगी की रेखा खींचते हुए कहा, ''ठीक ही हुआ। मैं तुम्हें महीने में पाँच बार किताब नहीं खरीद कर दे सकती।''

फटिक कुछ बोले बिना लौट आया-वह दूसरे का पैसा बर्बाद कर रहा है, ऐसा सोचकर वह अपनी माँ से मन-ही-मन बहुत रूठ गया; अपनी हीनता और दैन्य-बोध ने उसे मिट्टी में मिला दिया।

स्कूल से लौटकर उसी रात सिर में दर्द होने लगा और देह में कँपकँपी शुरू हुई। उसने समझ लिया कि बुखार आ रहा है। मामी इस बीमारी को कैसी बिना वजह की अनावश्यक परेशानी मान बैठेंगी, इसे उसने अच्छी तरह समझ लिया। बीमारी की हालत में वह निकम्मा विचित्र निर्बोध बालक दुनिया में अपनी माँ के अतिरिक्त और किसी के पास से सेवा पा सकता है, ऐसी प्रत्याशा करने में उसे लज्जा का अनुभव होने लगा।

दूसरे दिन सुबह फटिक फिर दिखा नहीं। चारों ओर पड़ोसियों के घर में तलाश की गयी पर उसका कोई पता नहीं चला।

उस दिन रात से ही सावन की मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। इसलिए उसकी खोज में लोगों को व्यर्थ में बहुत भीगना पड़ा। अन्त में कहीं भी न पाकर विश्वम्भर बाबू ने पुलिस को सूचना दे दी।

दिन भर के बाद, सन्ध्या के समय एक गाड़ी विश्वम्भर बाबू के घर के सामने आ खड़ी हुई। उस समय भी झर-झर वर्षा हो रही थीं, रास्ते में घुटनों तक पानी भर गया था। पुलिस के दो आदमियों ने फटिक को गाड़ी में से सहारा देकर उतार विश्वम्भर बाबू के पास ला उपस्थित किया। वह सिर से पैर तक भीगा था-सारा शरीर कीचड़ से लथपथ, आँखें और मुँह लाल, देह थर-थर काँप रही थी। विश्वम्भर बाबू उसे गोद में उठाकर अन्त:पुर में ले गये।

मामी उसे देखते ही कह उठीं, ''अरे बाबा, पराये लड़के को लेकर इतना कर्मभोग काहे का। उसे उसके घर भेज दो न!''

वास्तव में सारे दिन दुश्चिन्ता में उन्होंने अच्छी तरह भोजन तक नहीं किया और अपने लड़कों के साथ नाहक बहुत खिटखिट करती रही थीं।

फटिक ने रोते हुए कहा, ''मैं अपनी माँ के पास जा रहा था, ये लोग मुझे पकड़ लाये।''

बालक का ज्वर बहुत बढ़ गया था। सारी रात वह बकता रहा। विश्वम्भर बाबू डॉक्टर ले आये।

फटिक ने अपनी सुर्ख आँखे एक बार खोलीं। वह छत की कड़ी की ओर हत्बुद्धि-सा देखता हुआ बोला, ''माँ-माँ, मेरी छुट्टी हुई क्या?''

विश्वम्भर बाबू रूमाल से आँखे पोंछ, बड़े दुलार से फटिक के शीर्ण तप्त हाथ को अपने हाथों में लेकर उसके पास आ बैठे।

फटिक फिर अल्ल-बल्ल बकने लगा, ''माँ, मुझे मत मार, माँ मैं सच कह रहा हूँ कि मैंने कोई गलती नहीं की है।''

दूसरे दिन दोपहर में कुछ देर के लिए सचेत हो फटिक ने जैसे किसी के आने की प्रत्याशा में घर के चारों ओर आँखें फाड़कर दृष्टि दौड़ायी। फिर निराश हो दीवार की ओर मुँह फेर करवट ले लेटा रहा।

विश्वम्भर बाबू उसके मन के भाव को ताड़कर उसके कान के पास मुँह झुका कर मृदुस्वर में बोले, ''फटिक, मैंने तेरी माँ को लिवा आने आदमी भेजा है।''

दूसरा दिन भी बीत गया। डॉक्टर ने चिन्तित उदास मुख से जता दिया, हालत बहुत ही खराब है।

टिमटिमाते दीप के प्रकाश में विश्वम्भर बाबू रोग शय्या के पास बैठे प्रतिक्षण फटिक की माँ की प्रतीक्षा करते रहे।

फटिक खलासियों के सुर में कहने लगा, ''एक ब्याम मिलता नहीं, दो ब्याम मिलता है-ए-ए-ए नहीं।'' कलकत्ता आते समय उसे कुछ रास्ता स्टीमर से तय करना पड़ा था, खलासी लोग मोटा रस्सा फेंक जिस सुर में पानी की गहराई नाप रहे थे; फटिक अंडबंड बकता हुआ, उसी का अनुकरण करता हुआ, कातर स्वर में जल नापता अथाह समुद्र में यात्रा कर रहा है, बालक रस्सी फेंक कहीं उसकी थाह नहीं पा रहा है।

इतने में फटिक की माँ आँधी के वेग से कमरे में प्रवेश करते ही चिल्ला-चिल्लाकर शोक मनाने लगीं। विश्वम्भर के बहुत कष्ट से उनके शोकोच्छ्वास को निवृत्त करने पर, उन्होंने शय्या पर पछाड़ खा ऊँचे स्वर में पुकारा, ''फटिक! मेरे सोना! मेरे लाल!''

फटिक ने मानो अत्यन्त सहज ही में उत्तर देते हुए कहा, ''हँ-आ...।''

माँ ने फिर पुकारा, ''ओ रे फटिक, मेरे बेटे!''

फटिक आहिस्ता-आहिस्ता करवट ले, बिना किसी को सम्बोधित किये मृदु स्वर में बोला, ''माँ, अब मेरी छुट्टी हुई है। मैं अब घर जा रहा हूँ, माँ।''

[पौष, 1298 (बंगाब्द)1892 ई०]

एकांकी

आजादी की नींद

भुवनेश्वर प्रसाद

लेखक परिचय :

भुवनेश्वर प्रसाद जी अद्‌भुत प्रतिभा के धनी जीनियस रचनाकार थे। उनका जन्म 1910 ई० में शाहजहाँपुर में हुआ। भुवनेश्वर जी को जीवन में आर्थिक कष्टों का निरंतर सामना करना पड़ा। जीवन में आने वाली चुनौतियों से संघर्ष करते हुए वह निरंतर साहित्य सृजन में लगे रहे। वह बर्नार्ड शा, डॉ० एच० लारेंस, सिंगमंड फ्रायड और विश्व महायुद्ध से बहुत प्रभावित हुए जिसका गहरा प्रभाव इनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है। उनका जीवन, बेरोजगारी और साहित्य सृजन की दोहरी कठिनाइयों में बीता।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं *— श्यामा—एक वैवाहिक विडंबना, प्रतिभा का विवाह, शैतान, एक साम्यहीन साम्यवादी, रोमांस-रोमांच, स्ट्राइक, ऊसर, तांबे के कीड़े, सिकन्दर-अम्बी, कारवां, संग्रह में संग्रहित है। शुकदेव सिंह द्वारा सम्पादित भुवनेश्वर की रचनाओं में 'आजादी की नींद', 'रोशनी और आग' तथा अन्य रचनाएँ संग्रहित हैं। इनकी 'भेड़िए' कहानी की विशेष चर्चा हुई। 'आदमखोर', 'गोगोल के नाटक', इन्सपेक्टर जनरल का एकांकीकरण', कठपुतलियाँ इनकी प्रतीकवादी शैली की नाट्य कृतियाँ हैं। 'सींकों की गाड़ी' इनकी अंतिम रचना है। इनकी मृत्यु 1957 ई० में हुई।*

पात्र

एक पेशेवर नेता

ईमानदार बातून

एक विशेषज्ञ

एक कमसखुन

एक कवि

एक नौकर

मिसेज ई० बातून

मिस कटारा

बूढ़ी दाई

[ईमानदार बातून के मकान का बाहरी कमरा : कमरा साधारण है और शायद कभी-कभी बीते हुए जमाने में सजाया भी गया था।

लेकिन अब उसमें तरतीबवार और सलीके का विकृत और विद्रोही रूप नजर आता है। वैसे फरनीचर काफी है और कुर्सियाँ एकलीक तीनों तरफ की दीवारों से सटाकर रख दी गयी हैं। परदा उठने पर ईमानदार बातून जिसकी उम्र और तजुरबा ज्यादा नहीं है, लेकिन जिसे शायद ज्यादा बातूनीपन या जरूरत से ज्यादा ईमानदारी ने जगआलूदा बना दिया है, कुछ बेवजह और बेइरादा ढंग से कमरे की चीजें इधर-उधर कर रहा है। वह अचानक कोने की एक अलमारी की तरफ लपकता है, जैसे उसने कोई बड़ी बेकार और सारहीन चीज देख ली हो। अलमारी के पास पहुँचकर वह उस घर से कुछ किताबें उठाकर भीतर के दरवाजे में कुछ नाटकीय गुस्से से फेंक देता है।]

ई० बातून : मैं पागल हो जाऊँगा, मैं जहर खा लूँगा, मैं दाँतों से अपना हाथ काट लूँगा अगर मैंने इस कमरे में फिर कोई किताब देख ली...मैं कितनी बार और कितने तरीके से कह चुका हूँ।

[भीतर से मिसेज बातून घबरायी हुई आती हैं और हकबकी-सी कमरे में दाखिल होती हैं। मिसेज बातून की छवि कभी जरूर सुघड़ रही होगी, लेकिन यह सुघड़ता समय के हचकोलों से बचकर भी पति की ईमानदारी की स्वाभाविक नाहमवारी की शिकार हो गयी।]

मि० बातून : यहाँ अभी कोई चीज गिरी है? और...और...(फिर हकबकी रह जाती हैं।)

ई० बातून : जी हाँ यहाँ अभी जरा आसमान गिर गया है।

मि० बातून : ऐं! आप यह किस-किस पर जोर-जोर से बिगड़ रहे थे?

ई० बातून : हूँ-मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। तुम क्या कभी ईमानदार न हो पाओगी-और सितम तो यह है कि किसी दूसरे से नहीं, तुम खुद अपने से ईमानदार नहीं हो...अगर होती...अगर होती तो-

मि० बातून : तो कभी जहर खा लेती... ?

ई० बातून : **(सहसा उसके चेहरे पर गुस्सा बुझ जाता है।)** तुमने शायद यह बात बिल्कुल बेइरादा कही है और चंद रटे हुए अलफाज से ज्यादा यह कुछ नहीं है, लेकिन यह ईमानदारी की बात है, शोपेनहार के बाद इतनी ईमानदारी की बात सिर्फ तुमने कही है। ईमानदारी पैदा करने की सबसे अच्छी क्या, अकेली तरकीब यही है कि हम मौत नहीं अपने अंदर मौत का एक ईमानदार लालच पैदा करें। यही और सिर्फ यही जिंदगी की भारहीन गुरुता, एक एब्स्ट्रैक्ट मास पैदा करता है।

मिसेज बातून इस लम्बी स्पीच के बीच में ही अन्दर चली जाती हैं। भीतर से दाई की बूढ़ी और पकी हुई आवाज आती है।

दाई : अरे! ये किताबें किसने नाली में फेंक दीं-च् : च् : कैसी नीली-नीली दफ्तियों की किताबें यहाँ कीचड़ में डाल दीं! (हाथ में एक पानी टपकाती हुई किताब लिये दाखिल होती है।) लल्लन बाबू, देखो, ये तुम्हारी किताबें हैं?

ई० बातून : आह! ईमानदारी-इस दुनिया में तुम्हारा यह भोंडा चीरहरण कब खत्म होगा! तुम सोचती हो दाई कि मैं अब भी दो बरस का गुलाबी हाथों-पैरोंवाला बच्चा हूँ और मुझे उसी निकम्मे गुलगुले जैसे नाम से पुकारा करो-

दाई : (खुश होकर) रुई के गालों में रखकर तो मैंने पाला है। ले भला कहो...

ई० बातून : रुई के गालों में जैसे नन्हें खरगोस का बच्चा विबिसेक्शन के लिए पाला जाता है।

दाई : चुप रहो तुम! बात बहुत करते हो और काम-धन्धा तो तुम्हारे पास है नहीं अब, लो और किताबें फेंक दीं...(**पकी हुई समझदार कड़ाई से**) कुछ काम-धन्धा करो-अब यह किताबें गारत हो गई न? भला यह कोई बात है! तुमने क्यों फेंकी?

ई० बातून : फेंक दी, क्योंकि दुनिया की सब किताबें बेईमानी के तमगे हैं। झूठ का जुलूस हैं। अंधेरे के मील के पत्थर हैं। तुम क्या समझोगे, लेकिन जैसे अधमुए आदमी के मुँह में भी गंगाजल टपकाया जाता है, तुम्हें भी ईमानदारी की बात सुनानी पड़ेगी।

दाई : और मैंने मर-खपकर तुम्हें बित्ते-भर से इतना बड़ा किया।

ई० बातून : (**हिकारत की हँसी हँसकर**) और अब अगर तुममें दुर्वासा की तरह शाप देने की ताकत होती तो तुम मुझे फिर बित्तेभर का बामन बना लेती-लेकिन तुम यह कहोगी थोड़े ही, खुद सोचोगी भी नहीं। इसकी अदना-सी वजह है कि तुम ईमानदार नहीं हो।

[बायें विंग के दरवाजे से पेशेवर नेता दाखिल होता है। चूँकि वह पेशेवर है, उसके चेहरे मोहरे में एक कमीना इत्मीनान है, लेकिन वह नेता है, इसलिए डरा हुआ और अनिश्चित है और इसीलिए किसी तरह की वर्दी में है, उसके आते ही दाई चली जाती है।]

पे० नेता : (आते ही) आज हुजूर का मिजाज शाम से ही गर्म है। तभी तो मैं कहता हूँ कि हर संकट, हर क्राइसिस का असर आदमी पर एक अनजाने तरीके से पड़ता है, गैर जाने तरीके से। जैसे चाँद से समुद्र में ज्वार उठता है.....

ई० बातून : (क्वेस्चन) पेशेवर नेताजी, क्या मैं यह याद दिला सकता हूँ कि मैं यानी बजात खुद पब्लिक मीटिंग नहीं हूँ?

पे० नेता : ज्वार हो या भाटा, लेकिन समुद्र तो समुद्र ही रहता है, लेकिन यदि चाँद! दि क्राइसिस! उसने तुम्हें क्या, इन खाली कुर्सियों को भी पब्लिक मीटिंग बना दिया है।

ई० बातून : आह! आह! तुम शायद मेरी बुनियादी ईमानदारी की सजा हो। तुमने अपनी स्पीच शुरू कर दी...

[दाहिनी तरफ विशेषज्ञ दाखिल होता है, वह जवान और भौंचक्का है और सिवा उसके, जिसका वह विशेषज्ञ है, तमाम चीजों से डरता है और उन्हें तोड़ना चाहता है। वह कीमती कपड़े बड़ी ही बेपरवाही से पहने और आँखों पर रंगीन चश्मा चढ़ाये है।]

विशेषज्ञ : आखाह! यह बुनियादी चीजों का जिक्र कौन कर रहा। बुनियादी चीजें विशेषज्ञों की सम्पत्ति हैं। मसलन, दुनिया एक कार्ल मार्क्स से दूसरे कार्ल मार्क्स पर, जिस तरह लंगूर एक डाल से दूसरी और दूसरी से तीसरी पर कूदता है, कूद सकती है, लेकिन जॉन स्टुअर्ट मिल के बुनियादी सिद्धान्तों के खिलाफ नहीं जा सकती। यही तो मैं सोवियत रूस से कहता हूँ कि देखा भाई तुम...

ई० बातून : सोवियत रूस! कब और कहाँ मिल गया तुम्हें?

पे० नेता : बुनियादी बातें ठीक हैं, लेकिन अपूर्ण हैं। वे अपूर्ण हैं, कमजोर हैं–और एक सही और इंसानी मसरफ की मुहताज हैं। क्राईसिस, संकट (खाँसता है।)

[गवैयों की तरह गुनगुनाता कवि बाई तरफ से दाखिल होता है। कवि बेउम्र है। न बूढ़ा है न जवान और न जाने किस चीज में मगन है, ऐसी कोई चीज जिसे वह खुद नहीं जानता।]

कवि : नमस्कार बंधुओं। यहाँ तो अच्छी खासी बहस छिड़ी हुई है। लेकिन मैं आप लोगों से एक बात पूछता हूँ जिसके पीछे सारे वेद हैं, सारा सार है। पूछता हूँ कि उद्‌गम कहाँ है?

पे० नेता : तुम कवि, तुम सकून और विश्राम के कीड़े हो। तुम न गा सकते हो न चिल्ला सकते हो, इसलिए इनके बीच की चीज कविता करते हो। क्राइसिस तुम्हें न छूती है न चिढ़ाती है, वह तुम्हें मिटाने से इनकार कर ही देती है। वह तुम्हें एक हिजड़ा बनाकर अभयदान देती है।

[भीतर से दरवाजे के पास आकर दाई जरा तीखे स्वर से कहती है।]

दाई : यह तुम लोग आपस में बातें करते हो कि गालीगलौज करते हो–यह भी कोई बात है। यहाँ यह सब मत किया करो कि...

पे० नेता : क्या यह तुम्हारी खादिमा है? (दाई की तरफ उँगली उठाकर दिखाते हुए।)

ई०बातून : उसने अपनी जिन्दगी में एक बार भी पब्लिक मीटिंग नहीं देखी है। वह तबला तक तो बजाना जानती नहीं है। उसकी बात पर भरोसा मत करो। तुम कवि को खूब गालियाँ दो...

कवि : लेकिन क्यों गालियाँ दो। मैंने सीधी दो टूक बात पूछी–लेकिन शायद मैंने उद्‌गम की बात उठायी, नेता उससे चिढ़ गया। उसका सारा तर्करथ सरकण्डे की गाड़ी की तरह लौट गया।

विशेषज्ञ : सरकण्डे की नहीं, कूड़े गाड़ी की तरह लौट पड़ा।

पे० नेता : ईश्वर के लिए तुम चुप रहो। ईमानदार बातूनजी, तुम्हारी खादिमा ने मेरा अपमान किया है। (पैर पटककर) तुम लोगों की दावत करके अपने नौकरों से तौहीन कराते हो। लानत है तुम्हारी ईमानदारी पर! (और तेज होकर) ये मेयर सर्वेंट।

विशेषज्ञ : लेकिन वह बुनियादी उसूल जानती है। वह जानती है कि तुम कवि और नेता एक ही पेशे के आदमी हो। एक पेशे के आदमियों का आपस में लड़ना–लथाड़ना रायज और जायज है। उसने तुम्हारी दाद दी। उसका अपना तरीका है, चलो, आगे बढ़ो...

[इस बीच में कमसखुन अन्दर आ जाता है। वह मोटा भद्‌दा और असुशील–सा एक अधेड़ है। वह कम बोलता है। यह शायद उसकी वजाकता से ही जाहिर होता है। कमरे में आकर वह दो सेकेण्ड अजनबियों की तरह खड़ा रहता है और फिर अचानक जानकारी से मुस्करा देता है।]

कमसखून : लेकिन आप लोग सब खड़े क्यों हो? बैठ क्यों नहीं जाते? कुर्सियाँ बैठने के लिए ही बनायी जाती हैं।

[वे सब एकबारगी ऐं करते हैं और दरअसल अचम्भे में पड़ जाते हैं कि वाकई कुर्सियों के होते हुए भी वे अब तक क्यों खड़े रहे। अपनी इस जरा जाहिर अपदार्थता पर कुछ झेंप भी जाते हैं, ईमानदार बातून उसमें सबसे पहले सन्तुलित हो जाता है।]

ई० बातून : खूब कहा। दुनिया की तमाम बुनियादी बातों की नाक मोम कर दी। बुनियादी बात यह है : कुर्सियाँ बैठने के लिए होती हैं यह!

[सब बैठ जाते हैं। भीतर से बूढ़ी दाई फिर दरवाजे के पास जाकर कुछ तंबीह के साथ कहती है।]

दाई : अब तो सब लोग आ गये–(**झाँककर**) अभी वह बिटिया नहीं आयी। लेकिन लल्लन बाबू, तुम्हारा नौकर शाम का गया अभी तरकारी लेकर नहीं लौटा है। अब अगर खाने में देर हो तो धरती न छेद डालना। भला कब तरकारी आयेगी तो कब बनेगी और कब खायी जायेगी?

ई० बातून : तुमने फिर वही किया (**उठकर खड़ा हो जाता है।**), मैं हमेशा के लिए बैठने से इनकार करता हूँ। मैंने तुमसे गुस्से में, खुशी में, होश में, बेहोशी में, न जाने कितनी मरतबे कहा है कि तुम लल्लन बाबू मत कहो। लेकिन तुम...आह तुम! (दाई हकबकी रह जाती है।)

कवि : माताजी, जाइए, आप भीतर बैठिए। यह तो अपना थोड़ा-सा मनोरंजन कर रहे हैं। खाना खाने की भी जल्दी नहीं हैं। सुनिए, तब तक मेरा एक छोटा-सा गीत सुनिए।

[सब एकबारगी उठकर उसे रोकना चाहते हैं, लेकिन कवि शुरू कर देता है।]

"हमको हर पशु से बैर न पंछी प्यारा।"

"मानव ने मानव देख ठहाका मारा।"

ई० बातून : तुम एक मिनट रुक जाओ, एक मिनट, एक मेरी बात सुन लो, सुनो, फिर चाहे हम सबको गीत ही सुनाना, फाँसी पर चढ़ा देना।

[मिस कटारा दाखिल होती हैं। मिस कटारा आधुनिक और स्वदेशी हैं। इन दोनों की लगातार चाशनी ने उन्हें बुद्धिजीवी-अब इसका चाहे जो भी अर्थ हो-बनने पर मजबूर कर दिया है। इस मजबूरी को वह तन रहते हँस-बोलकर झेलेंगी, यह उनके रंगरेशे से टकपता है।]

मि०क० : मुझे ज्यादा देर तो नहीं हुई?

कवि : (**गाता जाता है और स्वागत का अभिनय करता है।**)

"क्यों तारों पर काई जमती, क्यों होता सागर खारा मानव ने मानव देख कटारा मारा-

माफ कीजिएगा मिस कटारा-ठहाका मारा।

मि०क० : शीर्षक! शीर्षक! कविता का शीर्षक क्या है आखिर?

ई० बातून : (**करीब-करीब रुआंसा-सा**) शीर्षक बता दीजिए। बिना शीर्षक बताये कविता पढ़ना हमारी तौहीन है। कतई ईमानदारी की बात नहीं है।

कवि : इस कविता का शीर्षक है 'उद्‌गम'।

पे० नेता : डिस्अलाउड (और झपटकर कवि का मुँह हाथ से बंद कर देता है)

ई० बातून : ईमानदारी की बात है, जब हमने नेताजी की गाली-गलौज नहीं चलने दी तो अब कविता का क्या सवाल है?

पे० नेता : मेरी गाली का मौजूं भी उद्‌गम था। आप हजरत को शायद याद होगा कि मैंने कवि से जो कहा, जिसे आप महानुभावों ने गाली-गलौज कहा, उसकी शुरुआत इसी उद्‌गम से हुई थी।

[कवि का मुँह वैसे ही बंद किये है। बाहर से नौकर घबराया हुआ आता है। वह एक साथ घबराया हुआ और खुश है और इसने उसके बुझे हुए चेहरे को विकृत कर दिया है।]

नौकर : मालिक! मालिक! तनिक द्याखौ आय, बाहिर कुछ हुई गवा।

ई० बातून : (दाँव-पेंच का अभिनय करते हुए) अबे शाम का गया हुआ अब लौटा है तो एक राग बनाकर-क्या हुई गवा?

बेईमानी के पण्डे। यह जिन्दगी हरगिज नहीं है। यह ईमानदारी की मोमियाई है-सच्चाई की तपेदिक है।

नौकर : आप तो फैलसूफी माँ बतियात हैं? बाहर साँचे कुछ हुई गवा। आज हमार देखत-देखत हुआँ कुछ हुई गवा।

कमसखुन : दम ले लो पट्‌ठे। फिर बतलाना, बाहर क्या हुआ।

नौकर : दम तो सांचेन भूल गया। (जोर-जोर से साँस लेता है)।

ई० बातून : (बाल नोचते हुए) अब अगर तू यहाँ से बाहर न गया तो मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा। अब तू ही रह ले इस घर में, मैं नहीं रहूँगा।

[बाहर कुछ शोर-सा होता है। कवि कसम खाता है और अपना मुँह छुड़ाने की भरकर कोशिश करता है।]

नौकर : सुनो ध्यान से। हम कहत हैं कि बाहर कुछ हुई गवा। हम पूछा को आपै की तरह एक बाबू कहिन तौन न जाने का भवा लेडियो उई जो गावत है, बोलत है न?

कमसखुन : लेडियो यानी रेडियो।

नौकर : वहे-वहे जो गावत है पतुरियन की तरह, सो आजाद हुई गवा।

कवि : (वह एकबारगी अपना मुँह आजाद कर लेता है।) आजाद! मेरी एक कविता है, आजादी। सिर्फ पैंतालिस लाइनें हैं उसमें, लेकिन वह अभी अधूरी है। कुछ सुनिए।

ई० बातून : (फिर लपककर उसका मुँह बन्द कर लेता है।) मैं प्रशा के इतिहास की दुहाई देता हूँ, तुममें से कोई इस पाजी लुच्चे ईमानदारी के कज्जाक को...

(**नौकर की तरफ इशारा करता है।**) बाहर निकाल दो। तुम जानते नहीं, यह जो तरकारी के पैसे ले गया था, उसकी शराब पी आया है। इसे निकाल दो–इसे फौरन निकाल दो, कब्ल इसके कि इसकी मोहक और घातक बेईमानी बादल बनकर यहाँ बरस न पड़े।

नौकर : (**अब उसका लहजा साफ शराबियों का–सा है। हाथ जोड़कर**) अब मालिक आजौ झूठ बोलब। पिया जरूर है लेकिन अस नहिन पिया है कि रहीसन की तरह बोंग जाई।

ई०बातून : (**कवि के मुँह के साथ कशमकश करते हुए**) देखा तुमने, यह हमारे ऊपर थूक रहा है। हमारी बुनियादें हिला रहा है। लानत है तुम्हारे ऊपर...

नौकर : मालिक की बात का बुरा न मान्यो ई आपन किताबैं ब्वालत हैं। विदवानी कर्त आंय।

ई०बातून : (**अब भी कवि से उलझा है।**) इसे मार डालो, इसे अपनी ढालों के नीचे कुचल डालो कमसखुन–लेकिन यह पहले मालूम कर ले कि बाहर क्या हुआ है।

बाहर से लाउडस्पीकर की गुजरती हुई आवाज आती है।

लाउडस्पीकर : आज रात को 'जीरो ऑवर' यानी बारह बजकर एक या एक बजने में उनसठ मिनट पर हमारा देश आजाद हो जायेगा। बोलो गुलामी की जय, परतंत्रता की जय, जिसकी वजह से हमें यह आजादी की घड़ी नसीब हुई। (कमरे में एक भूचाल–सा आ जाता है। कवि एकबारगी अपने आपको झट से छुड़ा लेता है। वह एकबारगी खड़ा होता है और फिर लड़खड़ाता हुआ विशेषज्ञ को पकड़ लेता है और दोनों फर्श पर ढेर हो जाते हैं। ईमानदार बातून भीतर की तरफ भागता है और बूढ़ी दाई से टकरा जाता है। पेशेवर नेता कोने की मेज पर एक मुस्कराते हुए स्टेच्यू की तरह अडिग खड़ा हो जाता है। कमसखुन कमरे में इधर–उधर चक्कर काटता है। नौकर एक अजीब अमानवी आवाज करता हुआ कमरे से बाहर भागता है। मिस कटारा बैग खोलकर उतावली से अपना मेकअप करती हैं, जैसे उन्हें किसी होनहार व्यक्ति का स्वागत करना है।)

कमसखुन : (**वही सिर्फ अपनी जगह पर बैठा है।**) यह खासी गद्दारी है। मैं पूछता हूँ, इसके क्या माने हैं? क्या आजादी एक अनहोनी और अनजानी घड़ी के सिवा कुछ भी नहीं है? यह क्या शोहदेबाजी? (**बाहर से नौकर घबराया हुआ आता है। अब की वह पहले से ज्यादा खुश है और उसका चेहरा और भी विकृत है।**)

नौकर : तनिक द्याखो आय के। आप मालिक लोग आय के तनिक द्याख लेओ, द्याख़ लेओ हम प्यादन के द्याखे का बराई है आजादी जानत अहो हुआँ का हुई गवा?

ई० बातून : मैं पूछता हूँ क्या कोई भी यहाँ कुछ नहीं कर सकता कि इस पाजी मुद्दई को यहाँ से बाहर निकाल दे, नेता तुम ठीक कहते थे...लेकिन नहीं (सहसा उठकर नौकर की तरफ लपकता है और उसे दबोच लेता है।) मैं कहता हूँ इसे यहाँ बन्द कर दो ताकि यह दूसरी कोई खबर न ला सके।

(नौकर दमबखुद रह जाता है। ई० बातून बड़ी आसानी से दरवाजा बन्द कर लेता है और इत्मीनान की साँस लेता है। इस बीच में तमाम लोग उठकर अपनी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। सिर्फ नेता वैसे ही स्टेच्यू की तरह मेज पर खड़ा है।)

विशेषज्ञ : मुझे गम नहीं सिर्फ एक थकान है। आजादी विशेषज्ञों की चीज है, न जनता की, न देश की। कवियों की बनायी आजादी किस काम की है?

ई० बातून : मैं, सिर्फ एक बात कहता हूँ कि हमें जल्द ही कोई राय नहीं कायम करनी चाहिए। हमें यह करना चाहिए...यह करना चाहिए...हमें आखिर क्या करना चाहिए...

कमसखुन : फैसला–हम क्यों फैसला करें? हम कोई फैसला नहीं करना चाहते। आपने मेरी कविता नहीं सुनी तो फैसला करने की आवश्यकता ही नहीं होती। फैसले निस्सार हैं। कोई चीज कभी फैसला ही नहीं होती।

पे० नेता : (मुरब्बियाना लहजे में) अब तुम्हें कोई फैसला करने की जरूरत नहीं है। तुम्हें अब तमाम फैसले करे–कराये हुए मिलेंगे।

विशेषज्ञ : अगर आप समझदार हैं और विशेषज्ञ की राय मानेंगे तो आजादी सिर्फ एक खबर है। सड़कों की भीड़ में घिसटती हुई एक खबर, इससे ज्यादा कुछ नहीं। (बाहर से नौकर फिर दौड़ता हुआ आता है। अब वह पहले से ज्यादा बदहवास और मगन है।)

नौकर : हम कहित हैं कि तुम हियाँ का कुल्हिया मा गुड़ पवाड़त हौ। बाहर निकर के द्याखो हुआँ मार आजादी मची आय।

विशेषज्ञ : अयं, इस बन्दर को तो आपने भीतर बन्द कर दिया था। यह बाहर कैसे भाग गया?

नौकर : (हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए) खता माफ होय हजूर। हम पीछे केर दीवार जो नीची आय फलाँग गयन। लेकिन तुमका जवानी की कसम।

[ईमानदार बातून फिर लपककर उसे दबोच लेता है और उसे लिये हुए अन्दर चला जाता है]

कमसखुन : हम क्यों न चुपचुपाते हुए यह मान लें कि हम आजाद हो गये!

कवि : नहीं, हरगिज और कदापि नहीं। 'मेरी आजादी' शीर्षक कविता अभी अधूरी है।

ई० बातून : (अन्दर से आता है) मैं उस हत्यारे को भीतर बाँध आया हूँ। मैंने उसे रस्सियों से जकड़ दिया है। मैं देखूँगा अब किस तरह बाहर जाता है। लेकिन हमें कुछ फैसला अभी और जरूर करना होगा।

पे० नेता : (जो अब करीब–करीब एक स्टेच्यू बन गया है।) यह नहीं हो सकता। तुम्हारे सारे फैसले बेसूद होंगे, सिर्फ एक मखौल। यही नहीं, यह देश और समाज के साथ गद्दारी होगी। हम कहते हैं कि फैसले तुम्हारी संपत्ति रहे ही नहीं।

विशेषज्ञ : हमें इस शख्स को बिल्कुल भूल जाना चाहिए। यह बुनियादी उसूलों के खिलाफ है। लेटूर्जे ने कहा है।

ई० बातून : आह, तुम मुझे न चैन से मरने दोगे, न आजाद होने। यहाँ न फैसलों का सवाल है, न बुनियादी उसूलों का। सवाल ईमानदारी का है...

कवि : सवाल सार का है तथा उद्गम का। तुम्हें यह सब कवि की आँखों से देखना पड़ेगा।

मिस कटारा : सवाल आजादी का है।

[अन्दर से दाई आती है।]

दाई : सवाल खाने का है। यह आज हो क्या रहा है लल्लन बाबू! यह नौकर, क्यों बाँधकर डाल दिया है? अब कब खाना बनेगा, कब खाया जायेगा।

ई० बातून : (भोंड़ा अभिनय करते हुए) तुम भीतर बैठो, हमें बड़े-बड़े फैसले करने हैं। हमें जीवन और मरन की सारी असंचित ईमानदारी को इस दम, इसी दम संचित करना है। तुम भीतर बैठो, ईश्वर के लिये।

दाई : और नौकर कहता है कि आजादी हो गयी, आजादी किस तरह होती है? आजादी होगी तो हम क्या करें?

कमसखुन : यह बात है! हम क्या करें (सब जैसे एक गहरे पसोपेश में पड़ जाते हैं। एकबारगी उठकर कमरे के बीचोबीच में आकर खड़े हो जाते हैं जैसे किसी अनजाने व्यापक खतरे ने उन्हें एक-दूसरे की पनाह लेने के लिए मजबूर कर दिया है। वह एक-दूसरे की तरफ एक अजीब बेबसी से देखते हैं। अचानक बाहर एक घना शोर उठता है जो अंधेरे की तरह बहकर पूरे कमरे पर छा जाता है। वे एक-दूसरे के और करीब आ जाते हैं। शोर जब मर जाता है तो वे फिर बोलने की हिम्मत करते हैं।)

विशेषज्ञ : आजादी! हम विशेषज्ञों को उसका सैकड़ों साल अध्ययन करना पड़ेगा। हम क्या कह सकते हैं और क्या कर सकते हैं!

ई० बातून : हमको अतिशय ईमानदारी चाहिए। इतनी कि वह आजादी और गुलामी का भेद मिटा दे। मैं पूछता हूँ, क्या यह मुमकिन है कि हम इस छन यहाँ, अभी वह ईमानदारी-हम क्या करें?

कवि : नहीं, यह नामुमकिन है। मैं अपनी सारी अधूरी कविताएँ इसी दम कैसे पूरी कर सकता हूँ? हम कुछ भी नहीं कर सकते। हम यह क्यों न मान लें कि हम कुछ नहीं कर सकते और गमहीन हो जायें। गम से अपनी चिर सूनी माँग भर लें और उसे पूरा-पूरा कबूल कर लें।

मिस कटारा : और मैं! और मैं हँसू या रोऊँ या सस्ती कसबियों की तरह अपने बाल बिखराकर चौराहे पर खड़ी हो जाऊँ (रुआंसी-सी) यह जो विष युग-युग से मेरे अंदर जमा हो रहा है, अगर मैं कहूँ कि तुम सब मेरे लाल सूरजमुखी-से ओठों को एक बार चूमकर इस विष को काट लो तो क्या तुम यह करोगे?

पे० नेता : (अपने पैडसटल से) मैं तुम्हें आगाह करता हूँ मिस कटारा, तुम फैसले कर रही हो। हम यह नहीं बरदाश्त कर सकते। मैं कहता हूँ कि यह बरदाश्त नहीं किया जायेगा।

मिस कटारा : (विद्रोह स्वर में) मैं यह कुछ नहीं जानती। इस एक पल में मुझे मालूम हुआ कि सदियों से एक घना सीला हुआ अंधेरा मेरे अंदर जमा हो रहा था। वाकई सदियों से। यह क्या उल्लुओं की तरह मुझे घूर रहे हो! (रुआंसी होकर) यह युग-युगांतर का उद्गम है। क्या तुम यह नहीं कर सकते कि तुम मेरे ओठों को चूमो और अंधेरा छंटे और...तुम ईमानदार बातून।

ई० बातून : नहीं, हरगिज नहीं।

कमसखुन : हमारी समझ में ही नहीं आता कि तुम क्या कर रही हो। तुम घबड़ा गई हो।

पे० नेता : क्राइसिस! यह सब उस क्राइसिस का असर है। अगर आप लोग इजाजत दें तो मैं एक बार फिर चाँद और ज्वार की बात उठाकर गुलामी और आजादी का आंतरिक भेद और ऐक्य आप लोगों पर वाजे कर दूँ...

मिस कटारा : (रुआंसी होकर) तुम चुप रहो! फिर क्या करें? क्या हम इस मुहूर्त के साथ गद्दारी करें? हम क्या करें? (यह सब जैसे प्रतिध्वनित करते हैं कि हम क्या करें। इसी बीच में नौकर दाहिनी तरफ के दरवाजे से आकर खड़ा हो गया है और एक कोरी लोलुपता से मिस कटारा की तरफ देख रहा है।)

ई० बातून : हे भगवान, यह सब यहाँ हो रहा है कि वहाँ, यह आज है कि कल। फिर छूट गया।

नौकर : (गिड़गिड़ाते हुए) मालिक, हम रस्सी काट डाला दाँतन से (अबकी वह काफी नशे में है) हुआँ मारे आजादी के, मारे आजादी के...

(ई० बातून फिर उसकी तरफ झपटता है। अबकी वह निडर अपनी जगह खड़ा रहता है। खाली बोतल, जो वह मजबूती से हाथ में थामे है, सामने कर लेता है।)

नौकर : अब ई सब न होई, अब कुछ और होई (ई० बातून ठिठक जाता है)

पे० नेता : (दाँत किटकिटाते हुए) अब का होई? इसका मुँह बन्द कर दो, सीसा पिलाकर इसकी हड्डियाँ भारी कर दो, कुछ करो, कुछ तुरन्त करो।

नौकर : (उचककर एक बोतल उसके सिर पर जमाता है। पेशेवर नेता वहीं ढेर हो जाता है।) अब तो कुछ और होई...

मिस कटारा : इसे कोई पकड़ लो। यह बेहद नशे में है। यह कुछ भी कर बैठेगा, यह कुछ कह बैठेगा।

[नौकर उन सबको पकड़कर उनकी कुर्सियों पर बैठा देता है। सब एकबारगी जैसे लुंज हो गये हैं और पत्थरों के स्टेच्युओं की तरह आडियंस की तरफ घूरते हैं।]

नौकर : हुई गवा-अब तुम अपन आजादी से स्वाओं, अब कुछ और होई।

काव्य

कबीर के दोहे

कबीरदास

कवि परिचय :

संत काव्यधारा के प्रवर्तक एवं निर्गुण भक्ति के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि कबीरदास का जन्म काशी में सन् 1398 ई० में हुआ था। कबीर दास के जन्म — समय के विषय में विद्वानों की भिन्न –भिन्न राय है। यह माना जाता है कि कबीरदास एक विधवा ब्राह्मणी की संतान थे जिसने लोक लाज के भय से उन्हें लहरतारा में एक तालाब के निकट छोड़ दिया था। इन्हें नीरू और नीमा नामक निःसन्तान जुलाहा दम्पत्ति ने प्राप्त किया और इनकी परवरिश की। कबीरदास के गुरु स्वामी रामानंद थे। जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह लोई नामक स्त्री से हुआ था। इनकी दो सन्तानें थीं — पुत्र कमाल और पुत्री कमाली। कबीरदास ने जुलाहा का पुश्तैनी धंधा ही परिवार के भरण–पोषण के लिए अपनाया।

कबीर दास पढ़े–लिखे नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों की कसौटी पर जिसे सही समझा उसे बेखौफ प्रकट किया। कबीरदास भाग्यवाद के प्रबल विरोधी थे। काशी में शरीर त्याग करने से मोक्ष के प्राप्ति होती है, इस मान्यता को झुठलाने के लिए अपने जीवन के अंतिम समय में वह काशी छोड़कर मगहर चले गए। कबीरदास रूढ़िवादिता, धार्मिक आडम्बर, अंधविश्वास, जाति–पाँति के भेद–भाव, मूर्ति–पूजा आदि के घोर विरोधी थे। कबीरदास के उपदेशों को उनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' नाम से संग्रहित किया। बीजक के तीन भाग हैं — 'साखी', सबद और रमैनी। कबीरदास की मृत्यु के संबंध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। उनकी मृत्यु सन् 1518 ई० में मानी जाती है।

(1) राम नाम के पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।

(2) माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान तैं, एक आध उबरंत।।

(3) भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार।।

(4) हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हेरी जाइ।।

(5) हिन्दू मूये राँम कहि, मूसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ।।

(6) काबा फिर कासी भया, राँमहि भया रहीम।
मोट चून मैद भया, बैठि कबीरा जीम।।

(7) कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै हाथ सौं, तब पैसे घर माँहि।।

(8) हरि हीरा जन जौहरी, ले ले माँडिय हाटि।
जब रे मिलैगा पारिखू, तब हीराँ की सारि।।

(9) हम घर जाला आपनां, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जो चलै हमारे साथि।।

(10) प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जेहि रूचै, सीस देइ लै जाइ।।

सूरदास के पद

सूरदास

कवि परिचय :

सूरदास जी कृष्णभक्ति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका जन्म सम्वत् 1540 (1483 ई०) में सीही नामक ग्राम में हुआ। कुछ विद्वान सूरदास का जन्म स्थान रूनकता मानते है। स्वामी वल्लभाचार्य जी सूरदास के गुरु थे। सूरदास वात्सल्य व श्रृंगार के अन्यतम कवि हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ *— सूर सागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी हैं।*

सूरदास ने अपने काव्य में बालकृष्ण के सौन्दर्य, चपल चेष्टाओं और क्रीड़ाओं की मनोरम झाँकी के साथ ही कृष्ण व गोपियों के अनन्य प्रेम का सरस, सजीव व मनोहारी चित्रण किया है। सूरदास जी ने भक्ति व विनय सम्बन्धी पदों की भी रचना की है।

इनकी काव्यभाषा सरस व मधुर ब्रजभाषा है। सूरदास के पद विभिन्न राग-रागिनियों में आबद्ध हैं। जिनमें साहित्य व संगीत का मणिकांचन संयोग हुआ है। गेयता, स्वाभाविकता, सरसता व मार्मिकता इनके काव्य का अद्वितीय गुण है। अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं का गायन ही सूरदास के जीवन का लक्ष्य था। इनकी मृत्यु सम्वत् 1620 (1563 ई०) में हुई।

भ्रमरगीत

1. मधुबन तुम कत रहत हरे ?
बिरह-वियोग स्याम-सुदंर के, ठाढ़े क्यों न जरे।।
मोहन बेनु बजावत तुम-तर, साखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि-जन ध्यान टरे।।
वह चितवनि तू मन न धरति है फिरि-फिरि पुहुप धरे।
सूरदास-प्रभु-बिरह-दवानल, नख-सिख-लौं न जरे।।

2. मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुन री सखी! जदपि, नँदलालहिं आना भाँति नचावति।।
राखति एक पाँइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन अज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी है आवति।।
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर-नारि नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सज्जा पर कर-सन पद पलुटावति।।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कांपि कुपावति।
सूर, प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर पै सीस डुलावति।।

3. देखियत कालिंदी अति कारी।
अहौ पथिक! कहियौ उन हरि सौं, भई बिरह-जुर जारी।।
गिरि प्रजंक तै गिरति धरनि धँसि, तरंग तरफ तन भारी।
तट बारु उपचार चूर जल, पूर पसेद पनारी।।
बिगलित कच कुस-काँस कूल पै, पंक जु काजल सारी।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, दिसि दिसि दीन दुखारी।।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी।
सूरदास-प्रभु! जो जमुना-गति, सो गति भई हमारी।।

4. ऊधौ! मन माने की बात।
दाख छुहारा, छाँड़ि अमृत-फल, बिष-कीरा बिष खात।।
जौ चकोर को दै कपूर कोउ, तजि अंगार अघात?
मधुप करत घर कोरि काठ में, बँधत कमल के पात।।
ज्यों पतंग हित जानि आपनों, दीपक सों लपटात।
सूरदास, जाकों मन जासों, सोई ताहि सुहात।।

सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी

सोहनलाल द्विवेदी

कवि परिचय :

सोहनलाल द्विवेदी का जन्म 22 फरवरी सन् 1906 ई० को कानपुर के पास फतेहपुर जिला के बिंदकी नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में एल.एल.बी. भी किया। 1938 से 1942 ई. तक दैनिक अधिकार के संपादक भी रहे। उन्होंने बच्चों की पत्रिका 'बाल सखा' का भी सम्पादन किया। महात्मा गाँधी का इन पर गहरा प्रभाव था।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — भैरवी, वासवदत्ता, कुणाल, पूजा गीत, विषपान, युगाधार और जयगाँधी इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। द्विवेदी जी ने प्रचुर बाल साहित्य की भी रचना की है। बाँसुरी, झरना, विगुल, बच्चों की बापू, चेतना, बाल-भारती, शिशु भारती, नेहरु चाचा, सुजाता, प्रभाती आदि उनके द्वारा रचित बाल साहित्य हैं।

द्विवेदी जी का साहित्य वर्तमान और अतीत की चेतना जागृत करने वाला साहित्य है। देश-भक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में हुई है। द्विवेदी जी को भारत सरकार द्वारा सन् 1969 ई. में 'पद्मश्री' की उपाधि प्रदान की गई। इनकी मृत्यु 1 मार्च सन् 1988 ई० को हुई।

सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

जब सारी दुनिया सोती थी
तब तुमने ही उसे जगाया
दिव्य ज्ञान के दीप जलाकर
तुमने ही तम दूर भगाया;

तुम्हीं सो रहे, दुनिया जगती
यह कैसा मद है मतवाले?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

तुमने वेद उपनिषद रचकर
जग–जीवन का मर्म बताया,
ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है,
तुमने ही तो गान सुनाया;

अक्षर से अनभिज्ञ तुम्हीं हो
पिये किस नशा के ये प्याले ?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

गंगा यमुना के कूलों पर
सप्त सौध थे खड़े तुम्हारे,
सिंहासन था, स्वर्ण छत्र था,
कौन ले गया, हर वे सारे ?

टूटी झोपड़ियों में अब तो
जीने के पड़ रहे कसाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये क्या राम–राज्य वह
जहाँ सभी को सुख था अपना
वे धन–धान्य–पूर्ण गृह अपने
आज बना भोजन भी सपना;

कहाँ खो गये वे दिन अपने
किसने तोड़े घर के ताले ?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये वृन्दावन मथुरा
भूल गये क्या दिल्ली झाँसी ?
भूल गये उज्जैन अवन्ती
भूल गये अयोध्या काशी ?

यह विस्मृति की मदिरा तुमने
कब पी ली मेरे मदवाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

भूल गये क्या कुरूक्षेत्र वह
जहाँ कृष्णा की गूँजी गीता,
जहाँ न्याय के लिए अचल हो
पांडु–पुत्र ने रण को जीता;

फिर कैसे तुम भीरू बने हो
तुमने रण–प्रण के व्रण पाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

तुमने तो जापान चीन तक
उपनिवेश अपने फैलाये,
तुमने ही तो सिंधु पार जा
करूणा के संदेश सुनाये;

भूल गये कैसे गौतम को
जो थे जगतम के उजियाले।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

याद करो अपने गौरव को
थे तुम कौन, कौन हो अब तुम।
राजा से बन गये भिखारी,
फिर भी मन में तुम्हें नहीं गम ?

पहचानो फिर से अपने को
मेरे भूखों मरने वाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

जागो हे पांचालनिवासी!
जागो हे गुर्जर मद्रासी,
जागो हिन्दू मुगल मरहठे
जागो मेरे भारतवासी!

जननी की जंजीरे बजती
जगा रहे कड़ियों के छाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

आभार

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

कवि परिचय :

शिवमंगल सिंह 'सुमन' हिन्दी प्रगतिवादी कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इनका जन्म 5 अगस्त सन् 1915 ई० को उन्नाव जिले के झगरपुर गांव में हुआ था। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं पी.एच.डी. किया। सुमन जी अनेक विश्वविद्यालयो में कार्यरत रहे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं— *हिल्लोल, जीवन के गान, युग का मोल, प्रलय –सृजन, विश्व बदलता ही गया, विन्ध्य हिमालय, मिट्टी की बारात, वाणी की व्यथा, कटे अगूँठों की बंदनवारें आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उन्होंने 'महादेवी की काव्य साधना' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ भी लिखा। 'उद्यम और विकास' उनका गीत काव्य है। 'प्रकृति पुरूष कालिदास' उनके द्वारा लिखित नाटक है।*

सुमन जी को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। सन् 1974 ई० में 'मिट्टी की बारात' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। इसी वर्ष वह 'पद्मश्री' पुरस्कार से सम्मानित हुए। उन्हें भारत–भारती पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। मध्य प्रदेश सरकार ने उन्हें शिखर सम्मान प्रदान किया। इन्हें सन् 1999 ई० में 'पद्मभूषण' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इनकी मृत्यु 27 नवम्बर सन् 2002 ई० में हुई।

(1)

जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को ध्यनवाद

जीवन अस्थिर अनजाने ही
हो जाता पथ पर मेल कहीं
सीमित पग–डग लम्बी मंजिल
तय कर लेना कुछ खेल नहीं

दाएँ–बाएँ सुख–दुख चलते
सम्मुख चलता पथ का प्रमाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

(2)

साँसों पर अवलम्बित काया
जब चलते-चलते चूर हुई
दो स्नेह-शब्द मिल गए, मिली
नव स्फूर्ति थकावट दूर हुई

पथ के पहचान छूट गए
पर साथ-साथ चल रही याद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

(3)

जो साथ न मेरा दे पाए
उनसे कब सूनी हुई डगर
मैं भी न चलूँ यदि तो भी क्या
राही मर लेकिन राह अमर

इस पथ पर वे ही चलते हैं
जो चलने का पा गए स्वाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

(4)

कैसे चल पाता यदि न मिला
होता मुझको आकुल-अन्तर
कैसे चल पाता यदि मिलते
चिर-तृप्ति अमरता-पूर्ण प्रहर

आभारी हूँ मैं उन सबका
दे गए व्यथा का जो प्रसाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

['प्रलय-सृजन' से]

पानी में घिरे हुए लोग

केदारनाथ सिंह

कवि परिचय :

केदारनाथ सिंह जी नई कविता के प्रमुख कवि हैं। अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवि हैं। इनका जन्म सन् 1934 ई० में उत्तर प्रदेश के बलिया जिला के चकिया गांव में हुआ था। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. एवं पी.एच.डी. किया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केन्द्र में आचार्य एवं अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं— *अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, यहाँ से देखो, बाघ, अकाल के सारस, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ आदि उनके काव्य संग्रह हैं। कल्पना और छायावाद, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, मेरे साक्षात्कार, मेरे समय के शब्द, उनके आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। समकालीन रूसी कविताएँ, कविता दशक आदि उनके द्वारा सम्पादित कृतियाँ हैं।*

केदार नाथ सिंह जी को मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, दिनकर पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, व्यास सम्मान से सम्मानित किया गया है।

पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को
और एक दिन

बिना किसी सूचना के
खच्चर, बैल या भैंस की पीठ पर
घर-असबाब लादकर
चल देते हैं कहीं और

यह कितना अद्‌भुत है
कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो
उन्हें पानी में
थोड़ी-सी जगह जरूर मिल जाती है

थोड़ी-सी धूप
थोड़ा-सा आसमान
फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे

उलझा देते हैं मूँज की रस्सियाँ और टाट
पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गन्ध
वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ

खाली टिन
भुने हुए चने
वे ले आते हैं चिलम और आग
फिर बह जाते हैं उनके मवेशी

उनकी पूजा की घण्टी बह जाती है
बह जाती है महावीरजी की आदमकद मूर्ति
घरों की कच्ची दीवारें
दीवारों पर बने हुए हाथी-घोड़े

फूल-पत्ते
पाट-पटोरे
सब बह जाते हैं
मगर पानी में घिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं-न-कहीं बचा रखते है
थोड़ी-सी आग

फिर डूब जाता है सूरज
कहीं से आती हैं
पानी पर तैरती हुई
लोगों के बोलने की तेज आवाजें

कहीं से उठता है धुँआ
पेड़ों पर मँडराता हुआ
और पानी में घिरे हुए लोग
हो जाते हैं बेचैन

वे जला देते हैं
एक टुटही लालटेन
टाँग देते हैं किसी ऊँचे बाँस पर
ताकि उनके होने की खबर

पानी के पार तक पहुँचती रहे
फिर उस मद्धिम रोशनी में
पानी की आँखों में
आँखे डाले हुए

वे रात-भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने
पानी की तरफ
पानी के खिलाफ

सिर्फ उनके अन्दर
अरार की तरह
हर बार कुछ टूटता है
हर बार पानी में कुछ गिरता है
छपाक्......छपाक्

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली (50 शब्द)

1. Accuracy — यथार्थता
2. Acceptance — स्वीकृति
3. Abolition — उन्मूलन
4. Abatement — अवसान
5. Agreement — अनुबंध
6. Assured — बीमित
7. Advocate — अधिवक्ता
8. Attorney general — महान्यायवादी
9. Action — कारवाई
10. Audit — लेखा परीक्षा
11. Bull — तेजड़िया
12. Boom — तेजी
13. Balance of payment — भुगतान शेष
14. Book credit — खाता उधार
15. Branch — शाखा
16. Camp — शिविर
17. Coding — बीजांकन
18. Claimant — दावेदार
19. Compensatory — प्रतिपूरक
20. Co-Operation — सहकारिता
21. Demurrage — विलम्ब शुल्क
22. Disbursement — संवितरण
23. Dividend — लाभांश
24. Decontrol — विनियंत्रण
25. Document — प्रलेख
26. Directory — निदेशिका
27. Eligibility — पात्रता
28. Ensuing — आगामी
29. Execution — निष्पादन
30. Exchange — विनिमय
31. Follow-up — अनुवर्तन
32. Goodwill — सुनाम
33. Gurantee — प्रत्याभूमि
34. Import — आयात
35. Inflation — स्फीति
36. Instrument — प्रपत्र
37. Inventory — माल-सूची
38. Investment — निवेश
39. Issue — निर्गम
40. Invoice — बीजक
41. Layout — विन्यास
42. Margin — लाभ सीमा
43. Negotiavility — पराक्राम्यता
44. Paid-up — चुकता
45. Provision — प्रावधान
46. Registration — पंजीकरण
47. Risk — जोखिम
48. Surety — प्रतिभू
49. Under writing — जोखिम अंकन
50. Warranty — आश्वस्ति